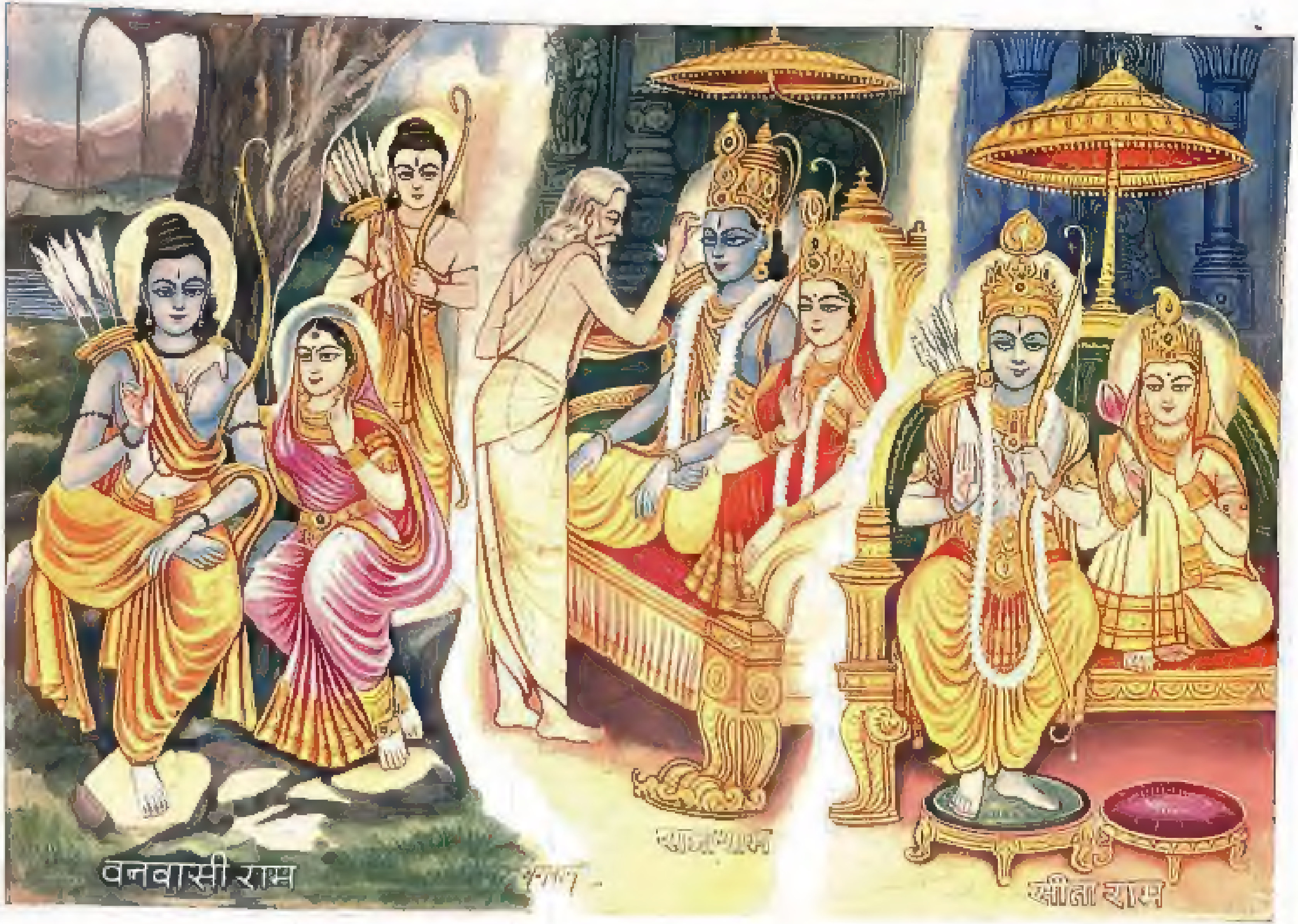

श्रीरामका वनवासी, राजा और गृहस्थ रूप

यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्तियुक्तो दृढव्रतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥

(इत्यार्षे अद्भुतरामायणे उत्तरकाण्डे, चतुर्दशः सर्गः)

'मैं ही स्वयंप्रकाश सनातन भगवान् ईश्वर हूँ। मैं ही परब्रह्म परमात्मा हूँ। मुझसे भिन्न दूसरी किसी वस्तुकी सत्ता नहीं है। हनुमन्! यह परम ज्ञान मैंने तुमसे कहा है—इसे जानकर जीव जन्म-मृत्युरूप संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। पवननन्दन! मैंने मायाका आश्रय लेकर राजा दशरथके घरमें अवतार लिया है। वहाँ मैं राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चार रूपोंमें प्रकट हुआ हूँ। यह सारी बात मैंने तुम्हें बता दी। कपिश्रेष्ठ! मैंने कृपापूर्वक तुम्हें अपने स्वरूपका परिचय दिया है। इसे सदा हृदयमें धारण करते रहना चाहिये। कभी भूलना नहीं चाहिये। जो तुम्हारे और मेरे इस संवादका नित्य पाठ करेगा, वह जीवन्मुक्त होगा और समस्त पापोंसे छुटकारा पा जायगा। जो विशुद्ध आचार-विचारवाले ब्रह्मचर्यपरायण द्विजोंको यह उपदेश सुनाता है, अथवा जो इसके अर्थका विचार करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जो दृढतापूर्वक व्रतका पालन करते हुए भक्तिभावसे प्रतिदिन इस प्रसङ्गको सुनता है, वह भी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसलिये मनीषी पुरुषों—विशेषतः ब्राह्मणोंको चाहिये कि वे सम्पूर्ण प्रयत्नके साथ इस प्रसङ्गको पढ़ें, सुनें और सदा इसका मनन करें।'

(अद्भुतरामायण, उत्तरकाण्डमें भगवान् श्रीराम
और हनुमान्‌का संवाद नामक
चौदहवाँ सर्ग समाप्त।)

श्रीरामगीता

(४)

[स्कन्दपुराण]

(अनुवादक—पं० श्रीरामभास्करजी शुक्ल शास्त्री, साहित्यकेसरी)

श्रीसनकजीने पूछा—अरुणानन्दन! उन सामर्थ्यशाली श्रीरामके द्वारा राक्षसराज रावणके मारे जानेपर जब तीनों लोकोंमें शान्ति स्थापित हो गयी, धर्म अपनी स्थितिमें आ गया तथा अग्निदेवके द्वारा अनिन्दिता सीताजी वापस दी गयीं, उस समय श्रीरामकी क्रोधाग्नि पुनः क्यों भड़क उठी? क्योंकि तब तो कोप करनेका कोई अवसर नहीं था। तबतक भगवान् श्रीराम अपना सम्पूर्ण कार्य भी सम्पन्न कर चुके थे, फिर भी उन्हें यह पुनः क्रोध उत्पन्न हुआ, यह महान् संशयका विषय है, जो मेरे हृदयमें उथल-पुथल मचा रहा है। अहो! जिन लोगोंने श्रीरामके वैभवका दर्शन किया है, वे परम धन्य हैं; क्योंकि आज भी उसका श्रवण करनेपर हमलोगोंको भी रोमाञ्च हो आता है ॥ १–४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—तदनन्तर लोगोंको रुलानेवाले उस रावणका वध हो जानेपर जब विद्वत्समुदाय भगवान् रामकी स्तुति कर रहे थे तथा उनके स्वरूपका भी स्मरण करा रहे थे, उस समय भक्तोंके हृदयमें रमण करनेवाले स्वच्छन्द चेष्टासम्पन्न श्रीरामने मानुषभावका परित्याग कर दिया। तत्पश्चात् वे जैसे समस्त प्राणियोंको अपने परमैश्वर्यशाली रूपका दर्शन करा रहे हों, इस प्रकार देवता, राक्षस और मनुष्यसहित इस विश्वको पूर्णरूपसे आच्छादित करके उसके बाहर-भीतर व्याप्त हो गये। उस समय उन्होंने विचार किया कि जैसे पहले मैं अपने एकत्वभावका गोपन करके सृष्टि-प्रपञ्चरूपसे विस्तारको प्राप्त हुआ था, उसी प्रकार आज पुनः प्रपञ्चताका उत्सर्ग करके एकत्वभावमें ही परिवर्तित हो जाऊँ। यों विचारकर अखण्ड चिदानन्दस्वरूपके आवेशसे वृद्धिको प्राप्त हुए परमाकाशस्वरूप भगवान् राम सब ओरसे बढ़ने लगे। उस समय वे आकाश, पृथ्वी और दसों दिशाओंकी ओर दृष्टिपात करके स्वच्छन्दतापूर्वक समस्त

भुवनोंका उपसंहार करनेका उपक्रम करने लगे। वे सनातन विष्णु ही भवपाशद्वारा बाँधनेवाले और भवपाशसे मुक्त करनेवाले हैं तथा वे ही कैवल्य-मोक्षके दाता एवं परब्रह्म हैं। जो गुणशाली व्यक्ति श्रीरामचन्द्रके गुणसमूहकी गणना करना चाहते हैं, वे मानो सागरके सम्पूर्ण जलको घड़ेसे नाप लेना चाहते हैं ॥ ५—१२ ॥

तदनन्तर प्रलयाग्निसे संयुक्त शेषजी विशेषरूपसे क्षुब्ध हो उठे। वे अपने फणोंद्वारा ब्रह्माण्डको ऊपर उठाते हुए चराचर जगत्को ग्रस लेना चाहते थे। उस समय पर्वत, नदी और नदोंसहित सारी पृथ्वी काँपने लगी। द्वीपोंसहित सातों समुद्र परस्पर मिलकर एकार्णवरूप हो गये। बारहों सूर्य एकबारगी अपनी किरणोंद्वारा प्रचण्डरूपसे तपने लगे तथा अग्निके तेजसे संतप्त हुई सात प्रकारकी वायु बड़ी तेजीसे चलने लगी। तब समस्त देवगण तथा सिद्धों और ऋषियोंके समुदाय इन्द्रको आगे करके ब्रह्माकी शरणमें गये। ब्रह्मा भी भयभीत होकर उन सबके साथ कैलास-पर्वतपर गये। वहाँ वे चन्द्रमौलिसे श्रीरामकी चेष्टाका पूर्णरूपसे निवेदन करते हुए कहने लगे— 'देवेश्वर! आप कल्याण करनेवाले हैं, अतः इस महान् भयसे हमारी रक्षा कीजिये। भव! आपके अतिरिक्त उन सर्वव्यापी श्रीरामकी क्रोधाग्निको कौन शान्त कर सकेगा। पार्वतीवल्लभ! अकस्मात् श्रीरामके क्रोधसे उद्भूत हुई यह प्रलयाग्नि हमलोगोंका पीछा कर रही है। पता नहीं, अब हमारी क्या गति होगी? किस दिशामें हमें आश्रय मिलेगा? और हम किस अवस्थामें पहुँच जायँगे?' ॥ १३—१९ ॥

इस प्रकार ब्रह्माका कथन सुनकर अपनी ध्वजामें वृषभ-चिह्न धारण करनेवाले भगवान् शंकर उन सबको साथ लेकर शीघ्र ही वैकुण्ठलोकमें विष्णुके निवासस्थानपर आये। वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण लोकोंको अभय प्रदान करनेवाले गरुड़-वाहन विष्णुका दर्शन किया और उन्हें प्रणाम करके सारा वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों उन्हें कह सुनाया। तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि समस्त देवगण एक साथ होकर महात्मा रामके पास आये। वहाँ उन्होंने श्रीरामको सारे ब्रह्माण्ड-मण्डलमें व्याप्त देखा। मायाने जिनकी बुद्धिपर परदा डाल रक्खा था, ऐसे देवता और मानव पहले उन मायातीत श्री-रामको एक श्रेष्ठ मानव समझकर उनका निरादर करके चले गये थे, वे ही अब उन्हें विश्वकोशको ग्रास बनाते देखकर भयभीत हो गये, उनकी आँखें मुँद गयीं। तब उन्होंने स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ २०—२६ ॥

देवगण बोले—चिदाकाशस्वरूप भगवन्! राक्षसोंके कुलका संहार करनेवाले ये श्रीराम क्या त्रिलोकविजयी मानव हैं अथवा स्वयं अधोक्षज हैं—इस प्रकार हम-जैसे जीवोंने जो आपके रूपके विषयमें विकल्प किया था, वह मृषा ही प्रतीत हो रहा है। दीनबन्धो! इस समय आपने जो यह रूप धारण कर रक्खा है, वह सदा रक्षणरूप कार्यके लिये मनुष्यरूपमें अभिनय करनेवाला, अपरिमित कृपामय और विष्णु आदि देवोंको भी नचानेवाला है। अतः विश्वभूमाका भी अतिक्रमण करने-वाले आपको हमारा प्रणाम प्राप्त हो। विभो! न तो हम आपका नाम जानते हैं और न हमें आपके रूपका ही ज्ञान है। आप अकेले ही अपनी आभासे विश्वको धारण किये हुए हैं। आपके शरीरमें इन समस्त भुवनोंके साथ हमारा स्थान कहाँ है—इसका ज्ञान हमें नहीं है; बल्कि आकाशमें रजःकण-की भाँति हम आपमें भ्रमण कर रहे हैं। भगवन्! आपका परमार्थ अतर्क्य है। जब आपकी कोई मूर्ति ही नहीं है, तब बहुत प्रकारसे वर्णन करनेवाली ये वाणियाँ किससे सम्बन्ध स्थापित करें और ये मन किसमें संलग्न हों। इस-लिये आप-जैसे जिस किसी महान् प्रभुको सदैव हमारा नमस्कार है। आपको ब्रह्मा तो कहा नहीं जा सकता; क्योंकि आप रजोगुणसे रहित हैं। सत्त्वगुणसे हीन होनेके कारण आप विष्णु भी नहीं हैं। आप स्वयं प्रकाशस्वरूप हैं और तमोगुणसे परे प्रकाशित हो रहे हैं, अतः आपको त्रिपुर-संहारक शंकर भी कैसे कहा जाय। श्रीराम मनुष्य और देवता—इन दोनोंसे भिन्न तथा स्थूल, सूक्ष्म, चर-अचर, दृश्य-अदृश्य समस्त जगत्में व्याप्त हैं। पहले भी थे और आगे भी होंगे। विश्व आपकी मूर्ति है, आपका क्रोध ही रुद्र है, यह काम ही प्रजा-पति ब्रह्मा है, मोह—मायास्वरूपा लक्ष्मीके स्वामी स्वयं विष्णु हैं और हमलोग आपके आज्ञाकारी अनुचर हैं। आप आनन्दघन हैं, अतः आपके लिये मोहका कोई हेतु नहीं है। अद्वितीय होनेके कारण आपमें राग-द्वेष भी कैसे हो सकते हैं? एकमात्र स्वयं अमितानुकम्पाके अतिरिक्त दूसरा कौन आपकी इस लीलाके निवारण करनेमें समर्थ हो सकता है। जिन आपका उन्मेष—पलक खोलना ही यह सृष्टि है और निमेष—पलक मूँदना ही प्रलय भी है तथा इन दोनों उन्मेष-निमेषकी साम्यावस्था ही ब्रह्माण्डोंका स्थिति-काल है, उन

आपको नियुक्त करनेमें हमलोग कैसे समर्थ हो सकते हैं ॥ २४—३२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—तदनन्तर वे सभी देवता जब भगवान् श्रीरामको प्रणिपात करके उठ खड़े हुए, तब उनकी ओर दृष्टि पड़ते ही पुनः अत्यन्त भयभीत हो गये। उस समय उनका 'यत्, त्वम्, अहम्' यह सारा ज्ञान भूल गया और वे सब-के-सब निश्चेष्ट होकर इस प्रकार मौन हो गये मानो उनके शरीरमें कोई इन्द्रिय-विकार था ही नहीं। तत्पश्चात् वे विष्णु आदि देवगण एक-दूसरेसे मिले और श्रीरामके ऐसे उत्कृष्ट प्रभावको देखकर उनके मन मुग्ध हो गये। यों सबके गतिहीन हो जानेपर शंकर दयार्द्र हो गये और श्रीरामको प्रसन्न करनेके लिये वे उन परमेश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ ३३—३५ ॥

श्रीशंकरजी बोले—'सुरनाथ! वेद जिसे सारी आपत्तियोंसे उद्धार करनेवाला, अद्वितीय तथा सम्पूर्ण ज्ञानका मूल आकर बतलाते हैं और जो संसारमें भक्तोंके सुख आदिके भोग और मुक्तिका एकमात्र कारण है, राम! वे तुम्हीं हो। कुछ लोग तपस्याद्वारा, दूसरे लोग यज्ञोंद्वारा तथा अन्यान्य लोग हवन-अर्चन, अध्ययन-दान और यम-नियमादि योगाङ्गोंसे एवं कुछ लोग एकमात्र परा भक्तिके द्वारा—यों विभिन्न प्रकारसे आप अद्वितीय परम पुरुषका भजन करते हैं। योगियोंके रमण-स्थान राम! आपका उत्तम नाम राक्षसरूपी गहन काननके लिये प्रलयाग्नि है। नाथ! जो आपके चरणकमलके भ्रमर हैं, उन हमलोगोंको भय हो रहा है, अतः आप शीघ्र ही हमारा भय दूर कर दीजिये। य[ह] विश्व आपका शरीर हो अथवा आप विश्वातीत हों या इस[से] बढ़-चढ़कर कोई अन्य ही आपका रूप हो, किंतु उससे हं[में] भय प्राप्त हो रहा है। अतः इस विश्वरूपका उपसंहार क[र] लीजिये; क्योंकि इसके तेजसे हम सब लोग विनष्ट कर दि[ये] गये हैं।

'करुणामय! जिससे सदा लोकोंका कल्याण होत[ा] है—ऐसा श्रुतियाँ वर्णन करती हैं और जिसकी कृपासे भक्त गण भवसागरको भी गौके खुरसे बने हुए गड्ढेकी भाँति पा[र] कर जाते हैं, उन आपसे यदि आपके कृपाश्रयी भक्तोंक[ो] भय प्राप्त हो तो अब हमलोग क्या कर सकते हैं। श्रीराम[!] आप ही षडैश्वर्यसम्पन्न ईश्वर हैं और हमलोग आ[प] परमेश्वरके अनुरक्त भक्त हैं। परमार्थ-दृष्टिसे तो हम आपके वैभवके एकमात्र निवासस्थान हैं। भला, ये परिमित कमल कोशके अन्तर्व्यापी आकाश उस महान् आकाशसे पृथक् कैसे ह[ो]

श्रीशंकर उवाच

सर्वापदुद्धरणमेकमशेषसंवि-
न्मूलाकरं च निगमा निगदन्त्यमी यम् ।
सोऽसि त्वमेव सुरनाथ सुखादिभुक्ते-
र्मुक्तेश्च राम! भजतामिह यो निदानम् ॥
एके तपोभिरपरे क्रतुभिस्तथान्ये
होमार्चनाध्ययनदानयमादियोगैः ।
भक्त्यैकयैव परया कतिचित् सदैव
त्वामेकमेव परमं बहुधा भजन्ति ॥
त्वं राम राम रजनीचरदुर्वनानां
कल्पान्तपावकनिजोत्तमनामधेयम् ।
नाथ त्वदङ्घ्रिसरसीरुहषट्पदानां
यस्माद् भयं त्वमभयं कुरु नस्ततो द्राक् ॥
विश्वं वपुर्भवतु वा तदतीतमस्माद्
वृद्धिष्ठमन्यदपि वास्तु यतो भयं नः ।
तस्मात्तदेवमुपसंहर विश्वरूपं
यत्तेजसा वयममी विवशीकृताः स्म ॥
क्षेमं यतो हि जगतां श्रुतिभिः सदोक्तं
त्वत्तो भयं यदि ततस्त्वदुपाश्रितानाम् ।
कुर्मः किमत्र करुणामय यत्प्रसादाद्
भक्ता भवाब्धिमपि गोष्पदमातरन्ति ॥
राम त्वमेव भगवान्प्रणता वयं वै
त्वद्वैभवैकनिलयाः परमार्थदृष्ट्या ।
व्योम्नः पृथक् कथममी प्रमिताब्जकोशा-
काशास्ततः परतरात् परमेश्वरस्य ॥

१. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥
(ना० पूर्व० ४६ । १७, २१-२२)

सकते हैं। ईश ! कहाँ तो आप तत्त्वमार्गसे अत्यन्त दूर गमन करनेवाले हैं और कहाँ हमलोग, जो तत्त्वरूपी अटवीमें परिभ्रमण कर रहे हैं, तथापि केवल आपकी भक्तिका अवलम्बन करके आप-जैसे किसी महापुरुषको नमस्कार करते हैं।

'आप परब्रह्म एवं विश्वके उत्पत्तिस्थान हैं, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा आपके ही अंश हैं, सत्-चित्-आनन्द आपका स्वरूप है, आप विश्वरूपको नमस्कार है। आप शाश्वत आनन्दके सुदृढ़ मूल हैं, आपका स्वरूप त्रिलोकीको आनन्दित करनेवाला है, आप मङ्गलमूर्ति विष्णुको प्रणाम है। उपाधिरहित स्वरूपवाले आनन्दात्माको अभिवादन है। जो ब्रह्मा और शंकरके भी पूजनीय हैं, उन सर्वदेवमयको मैं प्रणिपात करता हूँ। जो उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले तथा दुःखहारी हैं, जिनके सहस्रों सिर हैं, उन पुराणपुरुषको नमस्कार है। विश्व जिनका एकांशभूत है, जो त्रिपाद् रूपसे ऊपर स्थित हैं, जो विश्वातीत तथा विश्वमय हैं, उन महापुरुषको प्रणाम है। आपकी शक्तिका कहीं ओर-छोर नहीं है, आप नित्य-मुक्त हैं, आपको अभिवादन है। आपकी शक्ति कभी क्षत नहीं होती, आप सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप मन-बुद्धिसे परे हैं, केवल ज्ञान ही आपका स्वरूप है, ऐसे सत्त्वगुणरूप राघव तथा विद्या-स्वरूपा सीताको प्रणाम है। जिनका स्वरूप प्रपञ्चरहित है, उन श्रीरामको तथा प्रपञ्चरूपिणी सीताको नमस्कार है। योगीलोग जिनके स्वरूपका ध्यान करते हैं, उन राघवको तथा ध्यानस्वरूपिणी जानकीको प्रणाम है। जो परिणाम और अपरिणामरूपसे नित्य तथा कूटस्थ अक्षर और बीजरूप हैं, उन प्रकृतिस्वरूपा सीता और पुरुषरूप श्रीरामको बारंबार नमस्कार है।

'यह विश्व, जो शब्द-अर्थ अर्थात् नाम-रूपके आकारमें विस्तारको प्राप्त हो रहा है, जिसका विवर्त है, वह चिदाकाश आप ही हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् आपकी ही शक्ति है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया, विद्या, अविद्या, परा, अपरा, सत्, असत्, व्यक्त, अव्यक्त आदि सारी कलाएँ आपकी शक्तिसे उत्पन्न हुई हैं। प्रवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, उत्तमा, शान्त्यतीता, परा, सूक्ष्मा, समना आदि जो आपकी अनुग्रह-शक्तिसे नाना रूपोंमें दीख पड़ती हैं, यह सब सीताका ही विलास है। आप तो एकमात्र अद्वितीय ही पाये जाते हैं। आप क्षेत्ररक्षक होकर प्रवृत्तिके स्वामी 'सद्योजात' हैं तथा वासनारूपी शरीरमें स्थित होकर प्रतिष्ठाके स्वामी 'वामदेव' हैं। आप तेजके अक्षयनिधि

क्वासीश तत्त्वसरणेरतिदूरगस्त्वं
तत्त्वाटवीपरिचरा हि वयं क्व च स्मः ।
त्वद्भक्तिमात्रमवलम्ब्य तथापि तुभ्यं
कस्मैचिदेव महते नम आविदध्मः ॥

नमोऽस्तु ब्रह्मणे तुभ्यं परस्मै विश्वयोनये ।
सच्चिदानन्दरूपाय विश्वरूपाय वेधसे ॥
नमो निरन्तरानन्दमूलकंदाय विष्णवे ।
जगत्त्रयकृतानन्दमूर्तये शुभमूर्तये ॥
नमोऽस्तु निर्मलोपाधिस्वरूपाय मुदात्मने ।
नमो ब्रह्मेशपूज्याय सर्वदेवमयाय च ॥
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणे क्लेशहारिणे ।
नमः सहस्रशिरसे पुराणपुरुषाय ते ॥
एकांशीकृतविश्वाय त्रिपादूर्ध्वस्थिताय च ।
विश्वातीताय महते नमो विश्वमयाय च ॥
अनन्तशक्तये तुभ्यं नित्यमुक्ताय वै नमः ।
अलुप्तशक्तये तुभ्यं स्वतन्त्राय नमो नमः ॥

अचिन्त्याय नमस्तुभ्यं केवलज्ञानमूर्तये ।
सत्त्वाभाय च विद्यायै सीतायै राघवाय च ॥
नमः प्रपञ्चरूपिण्यै निष्प्रपञ्चस्वरूपिणे ।
नमो ध्यानस्वरूपिण्यै योगिध्येयात्मरूपिणे ॥
परिणाम्यपरिणामनित्याभ्यां च नमो नमः ।
कूटस्थबीजरूपाभ्यां प्रकृत्यै पुरुषाय च ॥
यद्विवर्तं इदं विश्वं शब्दार्थाकृति जृम्भते ।
तत्त्वमेव पराकाशस्त्वच्छक्तिरखिलं जगत् ॥
इच्छाज्ञानक्रियाश्चैव विद्याविद्या परापरा ।
सदसद्व्यक्तिरव्यक्तं त्वच्छक्तेरखिलाः कलाः ॥
प्रवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथोत्तमा ।
शान्त्यतीता परा सूक्ष्मा समना चोन्मनेति च ॥
सीताविलसितं सर्वं नानाकारेण दृश्यते ।
तवानुग्रहशक्त्यैव त्वमेकमपि लभ्यसे ॥
सद्योजातः प्रवृत्तेस्त्वमीशिषे क्षेत्ररक्षकः ।
वामदेवः प्रतिष्ठाया वासनातनुमास्थितः ॥

'अघोर' हैं और विद्याके भी स्वामी हैं तथा तत्त्वोंके वन्त्र-वाहक होकर शान्तिके प्राणस्वरूप 'तत्पुरुष' हैं। आप चिदाकाशरूपसे व्यापक होकर शान्त्यतीताके लिये 'ईशान' हैं। समनाके विष्णु तथा उन्मनाके निरञ्जन आप ही हैं। इस प्रकार यह भावस्थिति साक्षात् भिन्न-अभिन्नरूपसे स्थित है। यह शक्तिस्वरूपा सीता अनिन्द्य, अचला, अपरा तथा आपकी मूर्ति हैं।

'श्रीराम! सीता उन्मना हैं तो आप राम हैं, ये समना हैं तो आप शिव हैं, ये मातृका शुद्धा विद्या हैं तो आप सदाशिव हैं, ये अविद्या हैं तो आप ईश्वर हैं, ये माया हैं तो आप त्रिनेत्रधारी शिव हैं, सीता लक्ष्मी हैं तो आप विष्णु हैं, सीता गौरी हैं तो आप शिव हैं, सीता स्वयं सावित्री हैं तो आप चतुर्मुख ब्रह्मा हैं। सीता शची हैं तो आप इन्द्र हैं, सीता स्वाहा हैं तो आप अग्निदेव हैं, सीता संहार करनेवाली देवी हैं तो आप यमराज हैं। रघुश्रेष्ठ! सीता तामसी देवी हैं तो आप निर्ऋति हैं, सीता भार्गवी देवी हैं तो आप जगदीश्वर वरुण हैं। विभो! सीता सदागति देवी (सदा गमन करनेवाली वायुशक्ति) हैं तो आप जगत्के प्राणस्वरूप स्वयं वायुदेव हैं, सीता समस्त सम्पत्तिस्वरूपा हैं तो आप सदा मुदित कुबेर हैं। जानकी ऐश्वर्यस्वरूपा हैं और आप साक्षात् देवाधिदेव ईशान हैं, सीता रोहिणीदेवी हैं तो आप लोकोंको सुख प्रदान करनेवाले चन्द्रदेव हैं। विभो! सीता संज्ञा हैं तो आप सूर्य हैं, सीता रात्रि हैं तो आप दिन हैं, सीता दक्षिणा देवी हैं तो आप यज्ञपुरुष हैं। पुरुषोत्तम! भगवती सीता भुक्ति हैं तो आप भोग हैं। ये सीता अचल मुक्ति हैं तो आप भयरहित मोक्ष हैं। सीता जगत्का धारण-पोषण करनेवाली शक्ति हैं तो आप शक्तिसम्पन्न महेश्वर हैं, सीता महाकाली देवी हैं तो महाकाल भी आप ही हैं। श्रीराम! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ, आप परात्पर ब्रह्म हैं और ये सीता आपकी विभूति हैं, जो विश्वरूपसे विस्तारको प्राप्त हो रही हैं।

'सर्वव्यापक प्रभो! सारे लोकोंमें जितनी वस्तुएँ स्त्री-चिह्नसे विभूषित हैं, वे सब जानकीके स्वरूप हैं और जितने पदार्थ पुरुष-नामसे विहित हैं, उन सबके रूपमें आप विद्यमान हैं। सर्वत्र सभी प्राणियोंके शरीरोंमें सीता जैसे षट्चक्र[1]को धारण करनेवाली हैं, उसी प्रकार आप भी चक्रके भीतर चित्स्वरूपसे स्थित होकर विश्वको प्रकाशित

विद्याया अप्यघोरस्त्वं तेजसां निधिरव्ययः।
प्राणरूपपुरुषः शान्तेस्तत्त्वानां यन्त्रवाहकः॥
ईशानः शान्त्यतीताया व्यापको व्योमविग्रहः।
विष्णुश्च समनायास्त्वमुन्मनाया निरञ्जनः॥
ऐषं भावस्थितिः साक्षाद् भिन्नाभिन्नतया स्थिता।
सीता शक्तिरचिन्त्येषं त्वन्मूर्तिरचलापरा॥
सीतोन्मना भवान् राम समनेयं भवाञ्छिवः।
विद्येयं मातृका शुद्धा त्वं तु देव सदाशिवः॥
ईश्वरस्त्वमविद्येयं मायेयं त्वं च त्र्यम्बकः॥
सीता रमा भवान् विष्णुः सीता गौरी भवाञ्छिवः।
सीता स्वयं हि सावित्री भवान् ब्रह्मा चतुर्मुखः॥
सीता शची भवानिन्द्रः सीता स्वाहानलो भवान्।
सीता संहारिणी देवी यमरूपधरो भवान्॥
सीता तु तामसीदेवी निर्ऋतिस्त्वं रघूत्तम।
सीता तु भार्गवीदेवी वरुणस्त्वं जगत्पतिः॥
सीता सदागतिर्देवी जगत्प्राणः स्वयं विभो।
सीता हि सर्वसम्पत्तिः कुबेरस्त्वं सदोदितः॥
ऐश्वर्यं जानकी साक्षादीशानस्त्वं महेश्वरः।
सीता तु रोहिणीदेवी चन्द्रस्त्वं लोकसौख्यदः॥
सीता संज्ञा भवान् सूर्यः सीता रात्रिर्दिनं भवान्।
सीता च दक्षिणामूर्तिर्यज्ञमूर्तिर्भवान् विभो॥
सीता भुक्तिर्भगवती भोगस्त्वं पुरुषोत्तम।
सीतेयं मुक्तिरचला मोक्षस्त्वमकुतोभयः॥
सीता शक्तिर्जगद्धात्री शक्तिमांस्त्वं महेश्वरः।
सीता देवी महाकाली महाकालस्त्वमेव हि॥
किमत्र बहुनोक्तेन राम त्वं ब्रह्म तत्परम्।
त्वद्विभूतिरियं सीता विश्वाकारा विजृम्भते॥
स्त्रीचिह्नं सर्वलोकेषु यत्तत् सर्वं हि जानकी।
पुन्नामलाञ्छितं यत्तु यत्तत्सर्वं भवान् विभो॥
सर्वत्र सर्वदेहेषु सीता षट्चक्रधारिणी।
तथा त्वमपि चक्रान्तश्चिन्मूर्तिर्विश्वभासकः॥

१. षट्चक्र—गुह्यस्थलमें मूलाधारचक्र, लिङ्गमूलमें स्वाधिष्ठान-चक्र, नाभिस्थलमें मणिपूरकचक्र, हृदयमें अनाहतचक्र, कण्ठदेशमें विशुद्धचक्र और भ्रूमध्यमें आज्ञाचक्र है।

करते हैं। वस्तुतस्तु आप स्त्री-पुरुषभावसे रहित परम पद हैं। सारे देवता आपसे डरते रहते हैं और मनसहित वाणी भी आपसे भयभीत रहती है। जहाँ भेदका नाम-निशान नहीं है, वह सत्यानन्द आप ही हैं। 'त्वम्, सः और अहम्'—यों तीन प्रकारका जो यह सृष्टि-प्रपञ्च है, यह आपकी लीला है। प्रभो! वस्तुतः यह शक्ति-तत्त्वादिका भेद आपमें है ही नहीं; क्योंकि आप सत्-स्वरूप, अद्वितीय, सर्वव्यापक तथा एक हैं। जब आप अपनी स्वतन्त्रतासे सृष्टि करनेकी इच्छा करते हैं, तब आपमें शक्ति आदिका उपचार होता है। महेश्वर! आपके नाम-रूप भक्तोंके लिये मुक्तिदाता हैं। आप अप्रतिहत गतिवाले ईश्वर हैं। निराकार होते हुए भी भक्तोंपर कृपा करनेके हेतु साकार हो जाते हैं और अपने आनन्दमें ही रमण करते हैं। जनकनन्दिनी सीता चिच्छक्तिस्वरूपा हैं। आप इन्हें अपनेसे भिन्नकी भाँति प्रकट करके तारक ब्रह्म नामसे विख्यात अपने आपको स्वयं छिपा लेते हैं।

'जहाँसे वाणी मनके साथ दूरसे ही लौट आती है (वहाँतक नहीं पहुँच पाती), अन्धकारसे परे वह अविनाशी परम ज्योति आप ही हैं। मैं, ब्रह्मा, विष्णु, सारे देवता, चराचर जगत्—सभी आपके अंश हैं। इसी कारण इन उमाके साथ मैं जगत्पूज्य हुआ हूँ। श्रीराम! हम दोनों (गौरी-शंकर) जगत्-पूज्य हैं और आप दोनों (सीता-राम) हम दोनोंके भी पूज्य हैं। गौरी सदा आपके नामका जप करती रहती हैं और मैं आपके मन्त्रका जापक हूँ। मणिकर्णिका-तीर्थमें जब प्राणी अर्धजलमें निवास करता है, तब उस मुमूर्षुके लिये मैं आपके तारक-ब्रह्मनामक मन्त्रका उपदेश देता हूँ। 'श्रीराम राम राम'—यही तारक मन्त्र कहलाता है। अतः जानकीनाथ! निश्चय ही आप परब्रह्म हैं। सभी प्राणी आपकी मायासे मोहाच्छन्न हो रहे हैं, इसी कारण आपको तत्त्वतः नहीं जान पाते। आप अद्वितीय अखण्ड ब्रह्म हैं, आपको केवल आपकी भक्तिद्वारा ही जाना जा सकता है। श्रीराम! यद्यपि विश्व आपका रूप है और समस्त शब्द आपके ही वाचक हैं, तथापि आपका मूलमन्त्र सभीका अविनाशी बीज है। श्रीराम! आपका मूलमन्त्र 'ॐ' बीजसे युक्त होनेपर मुक्ति, 'श्रीं' बीजसे युक्त होनेपर भुक्ति, 'ऐं' बीजसे युक्त होनेपर वाक्सिद्धि और 'ह्रीं' बीजसे युक्त होनेपर सम्पूर्ण काम्य वस्तुओंका दाता है। महाबाहो! यह मन्त्रचिन्तामणि अचिन्त्य है। विभो! मोहान्धजन प्राणी इसे छोड़कर इधर-उधर भटकते रहते हैं।

स्त्रीपुम्भावादिरहितं त्वमेव परमं पदम्।
त्वत्तो बिभ्यति देवाश्च मनसा सह वागपि॥
सत्यानन्दस्त्वमेवासि यत्र भेदो न विद्यते।
तव लीलाप्रपञ्चोऽयं त्वं सश्चाहमिति त्रिधा॥
सन्मात्रस्याद्वितीयस्य विभोरेकस्य ते प्रभो।
शक्तितत्त्वादिभेदोऽयं वस्तुतो नैव विद्यते॥
स्वस्वातन्त्र्यात्सिसृक्षोर्वा शक्त्यादिरुपचर्यते।
भक्तानां मुक्तये ख्याते नामरूपे महेश्वर॥
निराकारोऽपि साकारो भक्तानामनुकम्पया।
स्वानन्द एव रमसे स्वच्छन्दगतिरीश्वरः॥
भिन्नामिव विभाव्यैनां चिच्छक्तिं जनकात्मजाम्।
गोपयस्यात्मनाऽऽत्मानं तारकं ब्रह्मसंज्ञितम्॥
यतो वाचो निवर्तन्ते मनसा सह दूरतः।
तत्त्वमेव परं ज्योतिस्तमसः परमव्ययम्॥
त्वदंशोऽहं हरिर्ब्रह्मा सर्वे देवाश्चराचराः।
जगत्पूज्यो ह्यहं तस्मादुमया सह चानघ॥
आवां राम जगत्पूज्यावावयोश्च पूज्यौ सदा।
त्वन्नामजापिनी गौरी त्वन्मन्त्रजपवानहम्॥
मुमूर्षोर्मणिकर्ण्यां तदर्धोदकनिवासिनः।
अहं दिशामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मवाचकम्॥
श्रीराम राम रामेति एतत्तारकमुच्यते।
अतस्त्वं जानकीनाथ परं ब्रह्मासि निश्चितम्॥
त्वन्मायामोहिताः सर्वे न त्वां जानन्ति तत्त्वतः।
त्वद्भक्त्यैव विजानन्ति ब्रह्मैकं त्वामखण्डितम्॥
विश्वरूपस्य ते राम विश्वेशब्दा हि वाचकाः।
तथापि मूलमन्त्रस्ते विश्वेषां बीजमव्ययम्॥
ताराद्विमुक्तये राम रमादिरपि भुक्तये।
वाग्भवादिश्च वाक्सिद्ध्यै मायादिरखिलेष्टदः॥
अचिन्त्योऽयं महाबाहो मन्त्रश्चिन्तामणिर्विभो।
विहायैवं विमूढात्मा इतश्चेतश्च धावति॥

अग्नि और सोम जगत्‌की उत्पत्तिके कारण हैं तथा बिन्दु और नाद क्षर-अक्षर हैं। परंतु आप इनसे अतीत तारक ब्रह्मस्वरूप मायारहित परमात्मा हैं।

'योगीलोग 'तत्, त्वम्, अहम्'—इन गुह्य तत्त्वत्रयको एकाकार करके अपने मूर्धामें स्वयंज्योतिःस्वरूप आपका साक्षात्कार करते हैं, जहाँ पहुँच जानेपर पुनः प्रत्यावर्तन नहीं होता। आप सर्वव्यापक, अचल और स्वराट् हैं। योगीलोग मनोनिग्रह और प्राणायामके द्वारा तीनों ज्योतियोंका भेदन करके आपको प्राप्त कर लेते हैं। ['राम' शब्दमें] रेफ (र) वह्नि-अग्नि तथा मकार (म) विष्णु-सोम कहलाता है और इन दोनों (रेफ और मकार) के मध्यमें आनेवाला आकार (ा) ब्रह्मा और सूर्य नामसे अभिहित होता है। सर्वव्यापक आकाशस्वरूप स्वयं नाद तीनों ज्योतियोंको ग्रास बनाकर सत्-स्वरूप आप परमेश्वरका ही निर्देश करता है। महेश्वर! सर्वप्रधान, विश्वका बीज और तारक होनेके कारण आपके अंशभूत इन तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शंकर) देवोंने आपके नाम (राम) को स्वीकार किया है। ये ब्रह्मा पहले ही भृगुवंशमें उत्पन्न होकर आपके नाम (परशुराम) को स्वीकार कर चुके हैं। पुनः इस समय विष्णु दशरथ-नन्दन राम होकर उसे स्वीकार कर रहे हैं। आगे चलकर मैं भी आपका सनातन संकर्षण (बलराम) नाम स्वीकार करूँगा। यों एक ही नाम उत्पत्ति, पालन और संहारके लिये तीन प्रकारसे स्वीकार किया गया है। श्रीराम! आपके तीनों भाई (भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) ब्रह्मा, विष्णु तथा मेरे (शंकरके) ही स्वरूप हैं। हमलोग आपसे ही प्रकट हुए हैं और पुनः आपमें ही लीन हो जायँगे।

'आप ही परम गुह्य, आप ही परम पद, आप ही परम ब्रह्म और आप ही हितकारी आश्रय हैं। श्रीराम! 'तत्, त्वम्, असि' यह महावाक्य वेदान्त-महावाक्योंद्वारा उपपादित आपके मन्त्रके तत्त्वार्थका निरूपण करता है। आपको नमस्कार है। ये विद्यास्वरूपा सीता आपकी स्वरूपभूता तथा आपमें ही अनुरक्त रहनेवाली हैं। इनमें दोषकी लेशमात्र भी सम्भावना नहीं है। ये आत्मघातियोंद्वारा अप्राप्य हैं। इन्हें अपनी शक्तिरूपमें देखिये। महाबाहो! यह विश्व आपकी क्रीडास्थली ही है; क्योंकि आप बुद्धिसहित दसों (पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच ज्ञानेन्द्रिय) इन्द्रियोंद्वारा इस विश्वमें व्याप्त हैं। ये वही आपके पिता दशरथजी हैं, जो अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे हैं। ये इन्द्रकी अनुमतिसे आपको देखनेके लिये यहाँ पधारे हैं। इनकी ओर दृष्टिपात कीजिये। सुरेश्वर! ये देवगण,

अग्नीषोमौ जगद्योनी बिन्दुनादौ क्षराक्षरौ ।
तारकस्तदतीतस्त्वं परमात्मा निरञ्जनः ॥
तत्त्वत्रयमिदं गुह्यमेकीकृत्य स्वमूर्धनि ।
स्वयंज्योतिः प्रपश्यन्ति यद्गत्वा न निवर्तते ॥
त्रीणि ज्योतींषि निर्भिद्य मनसा मारुतेन च ।
योगिनस्त्वां प्रपद्यन्ते स्वराजमचलं विभुम् ॥
वह्निरित्युच्यते रेफो विष्णुः सोमोऽपि उच्यते ।
तयोर्मध्यगतो ब्रह्मा त्वाकारो रविरुच्यते ॥
ज्योतींषि कवलीकृत्य दीप्याकाशो विभुः स्वयम् ।
नादोऽभिधत्ते तन्मात्रं त्वामेव परमेश्वरम् ॥
मुख्यत्वाद् विश्वबीजत्वात् तारकत्वान्महेश्वरः ।
त्वदंशैः स्वीकृतं देवैस्त्वन्नामभिस्त्रिभिः ॥
भार्गवोऽयं पुरा भूत्वा स्वीचक्रे नाम ते विधिः ।
विष्णुर्दाशरथिर्भूत्वा स्वीकरोत्यधुना पुनः ॥

संकर्षणस्त्व तथाहं स्वीकरिष्यामि शाश्वतम् ।
एकमेव त्रिधापात्यं सृष्टिस्थित्यन्तहेतवे ॥
भ्रातरस्ते त्रयो राम ब्रह्मा विष्णुरहं तथा ।
त्वत्तो विनिर्गता भूयो वयं लीयेमहि त्वयि ॥
त्वमेव परमं गुह्यं त्वमेव परमं पदम् ।
त्वमेव परमं ब्रह्म त्वमेव शरणं शिवः ॥
तत्त्वमसीति वेदान्तमहावाक्योपपादितम् ।
निर्दिशति मन्त्रतत्त्वार्थमिति राम नमोऽस्तु ते ॥
सीतानघया विद्येयं त्वन्मयी त्वत्परायणा ।
पश्यैनामात्मनः शक्तिमप्राप्यामात्मघातिकैः ॥
विश्वमेतन्महाबाहो लीलायतनमेव ते ।
दशेन्द्रियैर्वृतो विश्वं व्याप्तोऽसि च धिया सह ॥
पिता दशरथः सोऽयं दीप्यमानः स्वतेजसा ।
पश्यैनमिन्द्रानुमतं त्वां दिदृक्षुमिहागतम् ॥

पितर और मुनिश्रेष्ठ—सभी आपके अंश एवं शरणागत भक्त हैं, अतः हमपर अनुग्रह कीजिये। सारी शक्तियोंको धारण करनेवाले आप ही हमारे परमाधार, नेत्रस्वरूप तथा प्रेरक हैं। हम सब लोग आपका ही आश्रय लेकर समस्त कार्योंका विधान करते हैं। ईश! आप विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहारके लिये (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप) तीन शक्तियोंको ग्रहण करके सदा अपने भक्तजनोंको सुख देनेवाले अत्यन्त दुष्कर कार्योंको करते हैं। ईश! इस संसारमें आपके चरणाश्रित सभी भक्तजन निर्मल बुद्धिद्वारा आपके ईश्वरीय रूपको जानकर अपने मन, वचन, चेष्टा, मनोरथ तथा प्राणोंको आपमें ही अर्पित कर देते हैं, फिर एकीभूत होकर अक्षय पदको प्राप्त कर लेते हैं।

'आपने संसारका संहार तथा मोक्षरूप फल प्रदान करनेके लिये दीक्षा ले रखी है, ऐसे आत्माके मूलभूत आपकी जो लोग अन्य सांसारिक सुखोंकी प्राप्तिके लिये उपासना करते हैं, उनकी बुद्धिको निश्चय ही आपकी मायाने हर लिया है। प्रारब्ध निरन्तर उनके भाग्यको नष्ट करता रहता है और वे अभागे सदा भटकते रहते हैं। जिनका स्वरूप अनन्यभक्तिद्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है, जो परमानन्दरूप, निर्गुण तथा गुणात्मा हैं, उन चिदानन्दस्वरूप आपको नमस्कार है। जो समस्त तत्त्वरूप तथा तत्त्वोंके आधार हैं, जिनकी महिमा गुणोंद्वारा आच्छादित रहती है, जो सदा असुरोंसे द्वेष रखनेवाले हैं, उन आपको बारंबार प्रणाम है। मन्त्रके तत्त्वस्वरूप, शार्ङ्ग-धनुषधारी भगवान्‌को नमस्कार है। जो सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप तथा गौरवरूप हैं, उन चित्सुखात्माको प्रणाम है। शक्तिसम्पन्न आप हमारे सारे कार्योंका ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। सदा भक्तिपूर्वक आपकी उपासना करके हमलोग लोकमें पूजित होते हैं।' ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवगणोंने इस प्रकार स्तवन करके चैतन्यविग्रहधारी परमेश्वर रामसे यों वर-याचना की—'भगवन्! हमारी यह भक्ति आपमें ही अटलरूपसे रहनेवाली हो। यों कभी विमुख न होनेवाली भक्ति हमें दीजिये। इसके अतिरिक्त हम अन्य वर नहीं चाहते' ॥९६—११०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—तब दयालु श्रीरामने प्रसन्न होकर शिवजीसे 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' यों कहा और फिर उनका यथोचित सत्कार करके वे इस प्रकार कहने लगे ॥१११॥

श्रीराम उवाच

यः स्तौति परया भक्त्या स्तोत्रेणानेन मानवः।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥
रहस्यमन्यद् वक्ष्यामि भक्तानामनुकम्पया।
यस्य स्मरणमात्रेण शत्रूणां संक्षयो भवेत् ॥

त्वदंशानमरानेतान् पितॄंश्च मुनिपुंगवान् ।
अनुगृहाण त्वं भक्तान् नः सुरेश्वर संश्रितान् ॥
त्वं हि नः परमबन्धुः प्रेरकः सर्वशक्तिभृत् ।
त्वामाश्रित्य वयं सर्वे सर्वकार्यविधायिनः ॥
त्वं विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे
गृहीतशक्तित्रय ईश शश्वत् ।
करोषि कर्माण्यतिदुष्कराणि
भक्तेष्वनन्येषु सुखावहानि ॥
भक्तास्त्वदङ्घ्रिशरणाः किल ईश लोके
विज्ञाय निर्मलधिया तव रूपमैशम् ।
सर्वे त्वदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणा व्रजन्ति परमैक्यमनेकभावाः ॥
ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणलब्धदीक्ष-
मर्चन्ति नाम्यसुखहेतव आत्ममूलम् ।
नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते
दैवेन शश्वदभिभूतभगा भ्रमन्ति ॥
नमस्तेऽनन्यभक्त्यैकग्राह्यस्वरूपिणे ।
परमानन्दरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥
नमः समस्ततत्त्वाय तत्त्वाधाराय ते नमः ।
गुणच्छन्नमहिम्ने ते सर्वदासुरविद्विषे ॥
नमो भगवते मन्त्रतत्त्वविग्रहाय शार्ङ्गिणे ।
नमः सर्वप्रबोधाय गरिम्णे चित्सुखात्मने ॥
त्वमतः शक्तिभृत् सर्वकार्यसिद्धिप्रदायकः ।
त्वामुपास्य सदा भक्त्या भवामो लोकपूजिताः ॥
इति स्तुत्वाऽऽत्मनं रामं चैतन्यविग्रहम् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या वरयाचाञ्चक्रुरीश्वरम् ॥
स्यान्नस्त्वयि तु भगवन्भक्तिरव्यभिचारिणी ।
त्वय्येवाविरतां भक्तिं देहि नातो वरान्तरम् ॥
(अध्याय १, श्लोक ९६ से ११०)

हुं फट् रां ॐ राम राम मम मन्त्रं घोरं द्राक् ।
हन हन योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥
योऽसौ कालाग्निरुद्रोऽभून्मत्तः शत्रुविनाशनः ।
मदंशः स त्वमेवाजावमोघास्त्रं भविष्यति ॥
यत्प्रभावाद् भयं नैव शत्रुभ्यः पार्वतीपते ।
जप्तं हुतं सदा ध्यातं मृत्योरपि विनाशकम् ॥
अस्त्रं तु कवचादूर्ध्वं तारं च प्रणवात् पुरा ।
महामन्त्रेण युग्मात्तु जीवाक्षरयुगं वदेत् ॥
घोरेणोपलक्षितं शत्रुं तच्छब्देन विनिर्दिशेत् ।
द्राक्पदादुपरिष्टात् तु हनद्वन्द्वं समुच्चरेत् ॥
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इत्येतदुच्चरेत् ।
एतन्मदस्त्रं शत्रूणां मूर्ध्नि वज्रं पतिष्यति ॥
कालवज्रमिति ख्यातं तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
येन शत्रुभयान्मुक्तो मद्भक्तः सुखमेधते ॥
(अध्याय १, श्लोक ११२–११९)

श्रीरामने कहा—जो मनुष्य पराभक्तिसे युक्त हो इस स्तोत्रद्वारा मेरा स्तवन करता है, वह उस परम पदको प्राप्त कर लेता है, जहाँ जाकर पुनः शोक नहीं करना पड़ता। अब मैं भक्तोंके प्रति कृपापरवश हो एक दूसरे रहस्यका वर्णन करता हूँ, जिसके स्मरणमात्रसे शत्रुओंका विनाश हो जाता है। वह मन्त्र यों है—'हुम् फट् रां ॐ राम राम मम मन्त्रं घोरं द्राक्। हन हन योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥' वह जो शत्रुओंका विनाशक कालाग्निरुद्र मुझसे आविर्भूत हुआ था, मेरा अंशभूत वही तुम संग्राममें अमोघास्त्र होओगे। पार्वतीपते! जिसके प्रभावसे शत्रुओंका भय नहीं रह जाता और जो जपने, हवन करने तथा सदा ध्यान करनेसे मृत्युका भी विनाशक है (वह अस्त्र इस प्रकार है—) कवच (हुम्) के बाद अस्त्र (फट्) तथा प्रणव (ॐ) के पूर्व तार (रां) रखना चाहिये। पुनः दो बार महामन्त्र (राम राम) रखकर उसके बाद दो जीवाक्षर (मम) का उच्चारण करना चाहिये। 'घोर' शब्द शत्रुका उपलक्षण है, अतः उसके स्थानपर शत्रुका नाम-निर्देश करना चाहिये। तत्पश्चात् 'द्राक्' पदका न्यास करके उसके बाद दो हन (हन हन) का उच्चारण करे। तदनन्तर 'योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः' इसका उच्चारण करना चाहिये। यों 'हुम् फट् रां ॐ राम राम मम घोरं द्राक्। हन हन योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः' यह मेरा अस्त्र शत्रुओंके मस्तकपर वज्रके सदृश गिरेगा। यह 'कालवज्र' नामसे विख्यात है। इसे तुम्हारे स्नेहवश मैंने प्रकट कर दिया है। इसके प्रभावसे मेरा भक्त शत्रुभयसे मुक्त हो जाता है और उसे सुखकी प्राप्ति हो जाती है ॥११२–११९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—नर-नारायण ऋषियोंने इस अथर्ववेदोक्त मन्त्रको सुन्दर रथन्तरसामरूप कवच धारण करनेवाले वसिष्ठको प्रदान किया था। इसका तीन लाख जप करके उसके दशांश (३००००) मन्त्रद्वारा घीसंयुक्त खैरकी समिधासे हवन करना चाहिये। तब यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जो मनुष्य जगत्‌में इस प्रकार शिवजीके मुखकमलसे निकले हुए स्तोत्रमन्त्रोंद्वारा भक्तिपूर्वक प्रतिदिन श्रीरामकी आराधना करता है, वह यतियोंके लिये भी दुर्लभ अद्वितीय परम धामको प्राप्त करके अपार भवसागरके दुःखसे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। हे महामायास्वरूपिणी जानकी तथा त्रिपुर-संहारक श्रीराम! मैं अपार भवसागरमें डूब रहा हूँ, आप मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं (अर्थात् भवसागरसे मुझे उबार लीजिये) ॥१२०—१२३॥

स्कन्दमहापुराणोपनिषद्वर्णित श्रीमद्रामगीताका
पहला अध्याय समाप्त ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—तदनन्तर जिनका रौद्रांश चतुर्दिक् प्रकट हो रहा था, जो स्वेच्छानुसार विष्णु और ब्रह्माके अंशको ग्रहण करनेके लिये प्रयत्नशील थे, असंख्य तत्त्व जिनके आभरण थे, जो अनन्त सूर्योंके समान वर्चस्वी तथा असंख्य हाथ, पैर, नेत्र, सिर और मुख आदिकी क्रियाओंसे संयुक्त थे, जो निराकार, साकार प्रमाणमण्डलसे सुशोभित, विश्वके एकमात्र साक्षी, विश्वस्वरूप, विश्वातीत

तथा मायारहित हैं, जिनका स्वरूप कहीं प्रकट दीखता है, इस अवसरपर जो शान्त थे और अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर लेते हैं, जो नाना शक्तियोंसे व्याप्त तथा अनेकों दुर्धर्ष शरीर धारण करनेवाले हैं, जिनके प्रत्येक रोममें अनेक ब्रह्माण्ड लगे हुए थे, जिनसे उनकी विचित्र शोभा हो रही थी, जो बहुत-से रूप धारण करनेवाले तथा रूपरहित भी हैं, इस प्रकार जो ईश्वर-भावका आश्रय लेकर क्रीड़ा कर रहे थे, उन परमेश्वर रामको देखकर श्रीहरिने हाथ जोड़कर उन्हें बारंबार प्रणाम किया और उनकी स्तुति आरम्भ की ॥१—६॥

श्रीविष्णु बोले—श्रीराम ! आप सर्वव्यापक तथा विश्वके एकमात्र साक्षी हैं, ऐसे आपको नमस्कार है। विश्व एकमात्र आपका ही शरीर है तथा आप विश्वसे परे भी हैं, आपको बारंबार प्रणाम है। नित्य, शुद्ध, सर्वसमर्थ तथा कालस्वरूप आपको अभिवादन है। दसों दिशाएँ जिनकी भुजाएँ हैं, पृथ्वी जिनका चरण है, ऐसे आपको नमस्कार है। जल जिनका वीर्य है, सनातन तेज जिनका नेत्र है, वायु जिनकी चेष्टा है और आकाश जिनका शरीर है, उन महापुरुषको पुनः-पुनः अभिवादन है। श्रीराम ! मैं आपका हृदय हूँ। पितामह ब्रह्मा आपकी नाभि हैं। ये नीलकण्ठ महादेव आपके कण्ठस्थानीय हैं। सूर्य आपकी भौंहोंका मध्यभाग हैं। सदाशिव आपका ललाट हैं और उसके ऊपर-का भाग परात्पर शिव हैं। प्रभो ! सारे तत्त्व आप विश्वरूपके आभूषण हैं। आपके नृत्य करते समय ये पृथ्वी आदि सातों लोक आपकी रङ्गभूमि बन जाते हैं और सातों पातालगर्त

श्रीविष्णुरुवाच

नमो रामाय विभवे तुभ्यं विश्वैकसाक्षिणे ।
नमो विश्वैकदेहाय नमो विश्वातिगाय ते ॥
नमो नित्याय शुद्धाय प्रभवे कालमूर्तये ।
दशदिग्बाहवे तुभ्यं नमो भूचरणाय च ॥
नमोऽम्भोरेतसे शश्वत्तेजोनेत्राय ते नमः ।
वायुचेष्टाय महते व्योमदेहाय ते नमः ॥
अहं ते हृदयं राम तव नाभिः पितामहः ।
कण्ठस्ते नीलकण्ठोऽसौ भ्रूमध्यं च दिनेश्वरः ॥
सदाशिवो ललाटस्ते तत ऊर्ध्वं परः शिवः ।
भूषणानि च तत्त्वानि विश्वात्मस्ते प्रभो ॥
भूरादिसप्तलोकाश्च नृत्यतो रङ्गभूमयः ।

आपके पादतलकी चोटके रूपमें स्थित हो जाते हैं। श्रीराम ! आपकी अनन्त शक्तियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं।

प्रभो ! मैं आज आपके श्रीविग्रहमें पूर्वमें न देखे हुए ऐसे बहुत-से पितामहोंको, असंख्य विष्णुओंको तथा अनेकों रुद्रोंको देख रहा हूँ, जिनके विभिन्न रूप हैं, जो बहुत-सी भुजाओंवाले हैं, जिनके शरीरका रंग अनेकों प्रकारका है और जो महान् अभ्युदयशाली हैं। साथ ही जो अतीतके गर्भमें विलीन हो चुके हैं, जो वर्तमानमें स्थित हैं तथा जो भविष्यमें होनेवाले हैं, ऐसे बहुत-से देवगण भी आपके शरीरमें दृग्गोचर हो रहे हैं। प्रभो ! यों मैं आपकी विभूतियोंका अन्त नहीं देख पा रहा हूँ। आपके एक रोम-कूपमें देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किंनर, विद्याधर, ऋषिगण, चारणोंसहित सिद्ध, मनुष्य, पितृगण, पशु, सरीसृप (नाग)—ये सब-के-सब स्थावरों-सहित विलीन हो रहे हैं। यह विश्व-प्रपञ्च जिससे उत्पन्न हुआ है और जो विश्वपर विमोहका आवरण डालनेवाली है, वह यह त्रिगुणमयी माया आपकी इच्छासे उत्पन्न हुई है। यद्यपि परमार्थतः जीवात्मस्वरूप हमलोग आप चिद्भानुके ही अंश हैं तथापि आपकी मायाके कारण भिन्नकी भाँति दिखायी पड़ रहे हैं। विभो ! नक्षत्रोंसमेत समस्त ग्रह, सिद्ध तथा ऋषिगण जहाँ विचरण करते हैं और जिसने सारे जगत्‌को व्याप्त कर रक्खा है, वह आकाश आपकी नाभि है।

सप्त पातालगर्ताश्च पार्ष्णिघाताः स्थिता हि ते ॥
अनन्ताः शक्तयो राम प्रदृश्यन्ते तव प्रभो ।
बहूंश्चाहमसंख्यांश्च पश्याम्यद्य पितामहान् ॥
विष्णूनसंख्यान् पश्यामि त्वयि रुद्राननेकशः ।
बहुरूपान् बहुभुजान् बहुवर्णान् महोदयान् ॥
वर्तमानानतीतांश्च सुरानिह भविष्यतः ।
नाहमन्तं प्रपश्यामि विभूतीनां तव प्रभो ॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसकिंनराः ।
विद्याधराश्च ऋषयः सिद्धाश्च सहचारणैः ॥
नराश्च पितरश्चैव पशवश्च सरीसृपाः ।
त्वदेकरोमकूपे तु लीयन्ते स्थावरैः सह ॥
सैषा माया गुणमयी प्रपञ्चोऽयं यदात्मकः ।
त्वदिच्छातः समुत्पन्ना यया विश्वं विमोह्यते ॥
त्वदंशजोऽपि चिद्भानोः क्षेत्रज्ञास्त्वस्मदादयः ।
भिन्ना इव प्रदृश्यन्ते मायया परमार्थतः ॥
यत्र ग्रहाः सनक्षत्राः सिद्धाश्च ऋषयस्तथा ।
येन व्याप्तं च सकलं तद्वै नाभिर्विभो नभः ॥

'जिनकी वाणी प्रमाणस्वरूप मानी जाती है, ऐसे महापुरुष आपको आनन्दस्वरूप, अखण्ड, अद्वितीय तथा समस्त मायोपाधिसे रहित बतलाते हैं। जिसमें न पक्षपात है, न वैरभाव है, न अल्पदृष्टि है न मलभय, न षड्ऊर्मियाँ हैं, न नाम-रूप हैं, न कारणता है, न कार्यता है, न अन्त है, न आदि है, न मध्य है, न कोई भी आलम्बन है और न शून्यभाव ही है, मनसहित वाणी तथा अनेकों प्रमाण जिससे बहुत दूर रहते हैं—निकटतक नहीं पहुँच पाते, जिसने अपने परम सूक्ष्म स्वानीय प्रकाशसे विश्वको निरन्तर परिपूर्ण कर रक्खा है, इन्द्रादि तथा अन्य समस्त देवता और सभी पितर जिसके अंशभूत हैं—अधिक कहनेसे क्या लाभ, यह सारा जगत् रचनाकी इच्छावाले जिस सर्वव्यापकको परम विभूति है, जो विश्वरूपको सबसे बड़ा तथा स्वधाम-स्वरूप है, उस परात्परको हमलोग नमस्कार करते हैं। जिनके लिये सम्पूर्ण यज्ञोंमें आहुतियाँ दी जाती हैं, जिन प्रपितामहके लिये स्वधाका विधान किया जाता है, जिन विश्वभोक्ताके लिये जगत्में समस्त वेदरूपी, वषट्कार तथा स्वाहाका प्रयोग होता है, प्राणायामपरायण पुरुषोंका वेदादि भी अक्षररूप उद्गीथ (प्रणव) जिनकी प्राप्तिके लिये पर्याप्त है, जो अविनाशी तथा सामर्थ्यशालियोंके भी सनातन प्रभु हैं, जिनके सारे विकार नष्ट हो चुके हैं, अज्ञानसे आच्छादित बुद्धिवाले मूढ़लोग मनुष्यभावकी कल्पना करके जिनसे द्रोह करते हैं, सारे देवता, सिद्ध, ऋषि तथा वेदान्त-तत्त्वार्थके ज्ञाता यतीन्द्र भक्तिद्वारा जिनकी स्पृहा करते हैं, जो अद्वितीय ब्रह्म हैं, श्रीराम! वे आप ही हैं।

'गुणमयी मूर्तिरहित राम! जिस समय आप अपने एक रूपको अनेक रूपोंमें विभक्त करके विश्वका विस्तार करते हैं, उस समय जैसे सूर्यसे ये किरणें प्रकाशित होती हैं, उसी प्रकार हमलोग आपसे प्रादुर्भूत होते हैं। श्रीराम! यह क्रियाशक्ति पाँचों (व्यान, उदान, समान, अपान, प्राण) प्राणोंमें प्रवेश करके विश्वका सृजन करती है। पुनः आपकी यह पञ्चमुखी स्थित शक्ति पाँच प्रकारसे सम्पूर्ण जगत्का उपभोग करती है। जो

त्वामाहुरानन्दमखण्डमेकं
निरस्तमायोपधिमाप्तवाचः।
यस्मिन् पक्षो न च वा विपक्षो
न चाल्पदृक् वै मलभयं च॥
षडूर्मयो वै न च नामरूपे
न कारणं वै न च कार्यतापि।
नान्तो न चादिर्न च मध्यमीष-
दालम्बनं नैव च शून्यभावः॥
यस्मान्निवृत्ते निवसन्ति वाचो
मानान्यनेकानि दूरात् सदैव।
येनैव विश्वं स्वकया स्वभासा
पूर्णं सुसूक्ष्मेण निरन्तरेण॥
यस्यांशभूताश्च यथं तथान्ये
सुराः समस्ताः पितरश्च सर्वे।
किं वा बहूक्तेन जगत् समस्तं
सिसृक्षोर्विभूतिः परमा निरीशः॥
स्वधामरूपायपरात्परभूम्ने
तस्मै स्वधाम्ने हि नमो विनम्रः।
यज्ञानशेषान् जुहुवन्ति यस्मै
स्वधां विदध्युः प्रपितामहाय॥

यस्मै समस्ता च वषट्कृतिः सा
स्वाहा जगद्विश्वभुजे च यस्मै।
उद्गीथ एवाक्षर यदाप्त्यै
वेदादिचीर्ण प्रजितानिलानाम्।
नित्याय नित्यप्रभवे प्रभूणां
सदानपूतानिलविकियाय।
मुह्यन्त्यविद्योपहतास्च यस्मै
मर्त्यादिभावं परिकल्प्य मूढाः॥
देवाश्च सिद्धा ऋषयश्च सर्वे
वेदान्ततत्त्वार्थविदो यतीन्द्राः।
भक्त्यैव राम स्पृहयन्ति यस्मै
त्वमेव तद्ब्रह्म पदद्वितीयम्॥
यदैकमात्मानमनेकधैव
विभज्य विश्वं तनुषेऽमूर्ते।
तदैव भानोरिव रश्मयोऽमी
त्वत्तो वयं राम विनिःसृता हि॥
राम क्रियाशक्तिरियं हि पञ्च
प्राणान् समाविश्य करोति विश्वम्।
स्थितिशक्तिरेषा तव पञ्चधैव
भुङ्क्ते जगत्स्थितिं पञ्चवक्त्रा॥

१—ऊर्मि छः हैं—एक मतसे सर्दी-गरमी, लोभ-मोह, भूख-प्यास हैं तथा दूसरे मतसे भूख-प्यास, जरा-मृत्यु, शोक-मोह हैं।

इच्छारूपसे इस लोक और परलोकमें व्याप्त है, दसों इन्द्रियाँ जिसके गुणभूत हैं, वह आद्याशक्ति ही विश्वका सृजन, पालन और संहार करती है। आपकी शक्तिका अन्त नहीं है, विश्व आपका ही स्वरूप है और आप परम शक्तिस्वरूप हैं; अतः (सृजन, पालन और संहाररूप) ये तीनों शक्तियाँ आपकी ही हैं। महेश्वर! आप अटल सामर्थ्यशाली तथा आत्मतृप्त हैं। जब आपको विहार करनेकी इच्छा होती है, तब आपकी जो श्वेत, कृष्ण और लाल रंगकी कलाएँ हैं, उनके द्वारा आप विश्वरूपसे सृष्टिका विस्तार करते हैं। आप एक, सर्वव्यापक, अविनाशी और अद्वितीय हैं। हमलोग आपकी शरणमें हैं। आपकी उन्हीं तीनों कलाओंसे गौरी, लक्ष्मी और सरस्वती—ये तीनों ईश्वर-शक्तियाँ भी प्रकट हुई हैं। उनकी कोमल अंशकलाएँ विश्वके कल्याणके लिये सदा रुद्रों, विष्णुओं और ब्रह्माओंमें निवास करती हैं। आपकी मायासे मोहित होनेके कारण ही जगत्‌में नित्य हमारी, अन्धकासुरके शत्रु शिवकी तथा ब्रह्माकी पूजा होती है। साथ ही कुछ ऐसे अवधूत भी हैं, जिनकी सारी कामनाएँ नष्ट हो चुकी हैं और आपकी भक्तिके द्वारा जिनके मनकी कालिमा धुल गयी है; वे लोकमें अलक्षित हो रहे हैं। अपने शरीर आदिमें भी जिनकी स्पृहा नहीं रह गयी है, आकाशमें व्याप्त रहनेवाली वायुद्वारा ही जिनके प्राणोंकी चेष्टा होती है, जिनका भवरूपी कानन भस्म हो चुका है, ऐसे कल्याणकारी मुनियोंके सहारे आप ही हैं। परिमाणरहित, सर्वव्यापक महेश्वर! यद्यपि आप सत् अथवा असत् सभी वस्तुओंमें विद्यमान हैं, तथापि जिनका चित्त आपकी कृपादृष्टिसे पावन नहीं हो चुका है, वे लोग बहुत तरहसे विचार करनेपर भी आपको जाननेमें असमर्थ हैं। एक ओर कहाँ तो यह मानुषभाव और दूसरी ओर कहाँ यह लोकसे परे ईश्वरभाव! यह देखकर हमलोग आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं; अतः आप ही हमारे आश्रय हों।

'महेश्वर! बतलाइये, आप कौन हैं? तथा आज आप क्या करना चाहते हैं? आपका यह विश्वरूप तो अत्यन्त अद्भुत है, जिसे देखकर हमलोगोंको मोह हो रहा है। महेश्वर! आप स्वयं ही अपनेको सम्यक् प्रकारसे जानते हैं। आप जो हों, सो हों; आपको प्रमाणोंद्वारा प्रकाशमें उसी प्रकार नहीं लाया जा सकता, जैसे जुगनुओंद्वारा सूर्य। वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीमें स्थित परमाणुओंका अन्त तो मिल सकता है, परंतु अनन्तस्वरूप आपमें स्थित ब्रह्माण्डोंका अन्त नहीं है। आपसे ही उत्पन्न बहुत-से ऐसे ब्रह्मा दीख पड़ रहे हैं, जिनके पराक्रमकी सीमा नहीं है, जो स्वरूप, आयुध और वाहनोंके

इच्छोमयप्राणगता दशास्या
सृजत्यवत्यत्ति च शक्तिराद्या।
अनन्तशक्तेरिह विश्वमूर्ते-
स्तिस्रो दशः शक्तिमतस्तवैव॥

याभिर्महेश्वर सितासितलोहिताभिः
स्वाभिः कलाभिरचलप्रभुरात्मतृप्तः।
स त्वं प्रपञ्चयसि विश्वतया विहर्तुं
त्वामेकमेव विभुमव्ययमद्वितीयम्॥

ताभ्यस्त्रिमूर्त्य उदिता ननु तावकीभ्यो
गौरीन्दिरागिर ईश्वरशक्तयोऽपि।
तत्कोमलांशविभवानि वसन्ति नित्यं
रुद्रेषु विष्णुषु विधातृषु विश्वभूत्यै॥

पूज्योऽहमन्धकरिपुश्च तथा विरञ्चि-
स्त्वन्मायया मोहितयैव जगत्सु नित्यम्।
एकेऽपि केचन भवन्ति निरस्तकामा-
स्त्वद्भक्तिधौतमनसो भुवनेऽवधूताः॥

अपि स्वदेहादिषु निःस्पृहाणा-
माकाशलीनानिलचेष्टितानाम्।
त्वमेव कल्याणकृतां मुनीना-
मालम्बनं भस्मभवाटवीनाम्॥

किं त्वमीश्वर विभो बहुधा विमृश्य
सत्स्वप्यसत्स्वपि च व्याप्यसदैव वस्तु।
ज्ञातुं तथाप्यपरिमेय न शक्यसे तै-
र्येषामनुग्रहदृशा न पुनासि चेतः॥

क चायं मानुषो भावः क चायमतिलौकिकः।
त्वन्मायामोहितानां नस्त्वमेव शरणं भव॥

कोऽसि ब्रूहि महेशान किं त्वया समीहितम्।
अत्यद्भुतं ते विश्वात्म्यं मुह्यामो यन्निरीक्षणात्॥
त्वमेव वेत्थ त्वां सम्यक् योऽसि सोऽसि महेश्वर।
द्योत्यसे नैव मानैस्त्वं खद्योतैर्द्युमणिर्यथा॥
अन्तोऽस्ति परमाणूनां मरुद्वह्न्यम्बुभूमिषु।
नान्तोऽस्ति त्वयि लीनानां ब्रह्माण्डानामनन्तिके॥
लक्ष्यन्ते येन यान्तो ब्रह्माणोऽनन्तविक्रमाः
विलक्षणा विपश्यन्ते स्वरूपायुधवाहनैः॥

भेदसे परस्पर एक-दूसरेसे विलक्षण हैं। उनमेंसे कुछ चार मुखवाले हैं तो किन्हीं-किन्हींके पाँच, छः, दस और सौ मुखतक हैं। कुछ हजार मुखवाले भी हैं तथा अन्य कुछ महात्माओंके बहुत-से मुख हैं, बहुत-सी भुजाएँ हैं और आकार भी अनेक हैं। उनके आयुध और वाहन विचित्र हैं। वे विभिन्न प्रकारकी सृष्टि-रचनामें कुशल हैं। उनकी शक्ति भी विचित्र है, वे भक्तिपूर्वक आप महेश्वरको नमस्कार कर रहे हैं। कुछ अनेकों स्तोत्रोंद्वारा आपका स्तवन कर रहे हैं तो कुछ निश्चल होकर आपके ध्यानमें मग्न हैं। वे मत्सरहीन होकर एक-दूसरेको आपकी प्राप्तिका उपाय बतला रहे हैं और सर्वभावसे परमाश्रयरूप आपके ही शरणागत हैं। इसी प्रकार विलक्षण शक्तिसम्पन्न असंख्य विष्णु और शिव भी दीख रहे हैं। उनके भी वाहन, आयुध और विग्रह भिन्न-भिन्न हैं। वे सभी आपकी प्रभाके अंशके अंशसे उत्पन्न हुए हैं और सदा आपकी उपासना करते रहते हैं। इसलिये विश्वतोमुख, कृपापूर्वक हम भक्तोंपर अनुग्रह कीजिये॥ ७—४७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रभावशाली विष्णुके द्वारा यों स्तवन किये जानेपर श्रीरामका मुख प्रसन्नतासे उत्फुल्ल हो उठा और वे हँसते हुए वचन बोले ॥ ४८ ॥

श्रीराम उवाच

अहमात्मा परो नित्यः सन्मात्रो विभुरीश्वरः ।
सदसद्भावरहितो भेदाभेदविवर्जितः ॥
एकोऽद्वितीयोऽविकृतो निराकारो निरञ्जनः ।
मच्छक्तयो विश्वमिदं भिन्नाभिन्नतया स्थितम् ॥
यत्र त्वमन्ये बहवस्तत्त्वानामधिपाः सुराः ।
मदंशांशावलम्बेन खे खद्योता इवासते ॥
अहमेवादिरानन्दो निरालम्बः स्वराड् विभुः ।
सर्वः सर्वगतः शान्तः शुद्धश्चैतन्यविग्रहः ॥
आकाशस्यास्मि चाकाशो दिग्दिशामस्मि शाश्वती ।
कालस्यापि महान् कालो ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम् ॥
कारणं कारणानां च करणानामहं मनः ।
अणूनां परमाणीयान् महतां च महत्तरः ॥
विभुर्विभूनामधिकस्तत्त्वानां तत्त्वमुत्तमम् ।
योगो निर्वाणमार्गाणामहमस्मि सनातनः ॥
प्राणः प्राणभृतामस्मि दमश्चास्मि तपस्विनाम् ।
शान्तिरस्मि मुमुक्षूणां प्रणवोऽस्मि गिरामहम् ॥
विधिः क्रियावतामस्मि निवृत्तिरपि योगिनाम् ।
दीक्षितानां रतिश्चास्मि विरतिश्च विवेकिनाम् ॥
महोपनिषदं विष्णो संगृह्य कथयामि ते ।
समना संसारिणामुन्मनास्मि मदर्थिनाम् ॥
यत्किंचित्परमं लोके तत्तदस्मि जनार्दन ।
मया व्याप्तमिदं विष्णो विश्वमव्यक्ततेजसा ॥

(अध्याय २, श्लोक ४९ से ६९)

श्रीरामने कहा—मैं परमात्मा, अविनाशी, सत्-स्वरूप, सर्वव्यापक, परमेश्वर, सत्-असत्‌भावसे रहित, भेदाभेदशून्य, एक, अद्वितीय, अविकारी, निराकार और मायारहित हूँ। यह विश्व मेरी शक्तियोंका ही विलास है, जो भिन्न-अभिन्न रूपसे स्थित है। जिसमें तुम तथा अन्य बहुत-से तत्त्वाधीश्वर देवता मेरे अंशांशके सहारे आकाशमें जुगनुओंकी भाँति स्थित हैं। मैं ही आदि, आनन्दस्वरूप, निरालम्ब, स्वराट्, व्यापक, सर्वरूप, सर्वव्यापी, शान्त, शुद्ध, चैतन्यविग्रह और आकाशका भी आकाश हूँ। मैं ही दिशाओंकी सनातनी दिशा हूँ। कालका भी महाकाल, ज्योतियोंकी उत्तम ज्योति, कारणों

केचिच्चतुर्मुखाः केचित् पञ्चवक्त्राश्च षण्मुखाः ।
दशवक्त्राः शतास्याश्च सहस्रवदना अपि ।
बहुवक्त्रा बहुभुजा बहुरूपास्तथापरे ।
विचित्रसृष्टिकुशला विचित्रायुधवाहनाः ॥
विचित्रशक्तयो भक्त्या त्वां नमन्ति महेश्वरम् ।
स्तुवन्ति बहुभिः स्तोत्रैरेके ध्यायन्ति निश्चलाः ॥
त्वत्प्राप्त्युपायमन्योन्यं बोधयन्ति विमत्सराः ।
प्रपन्नाः सर्वभावेन त्वामेव शरणं परम् ॥
एवं बहुविधाकारा वाहनायुधविग्रहाः ।
विचित्रशक्तयोऽनन्ता हरयश्च कपर्दिनः ॥
त्वत्प्रभांशांशविभवास्त्वां सदा पर्युपासते ।
अनुगृहाण भक्तांस्त्वं प्रसादाद् विश्वतोमुख ॥

(अध्याय २, श्लोक ७ से ४७)

का कारण और इन्द्रियोंका शासक मन इन्द्रिय मैं हूँ। मैं ही अणुओंमें परमाणु, महतोंमें महत्तर, विभुओंमें श्रेष्ठ विभु, तत्त्वोंका उत्तम तत्त्व और निवृत्तिमार्गियोंका सनातन योग हूँ। मैं प्राणधारियोंका प्राण हूँ, तपस्वियोंका इन्द्रिय-दमन हूँ, मुमुक्षुओंकी शान्ति हूँ और शब्दोंमें ॐकार हूँ। क्रियावानोंकी विधि और योगियोंकी निवृत्ति भी मैं ही हूँ। मैं ही दीक्षितोंकी रति और ज्ञानियोंका वैराग्य हूँ। गमनशीलोंके लिये समना तथा मेरे लिये यत्न करनेवालोंके लिये उन्मना मैं ही हूँ। विष्णो! यों महोपनिषद्को स्पष्ट करके मैंने तुमसे वर्णन किया है। जनार्दन! इस प्रकार लोकमें जितनी परमोत्कृष्ट वस्तुएँ हैं, वे सब मैं ही हूँ। विष्णो! जिसका तेज अव्यक्त है, ऐसे मेरेद्वारा यह सारा विश्व व्याप्त है ॥४९—५९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—यों कहते हुए उन अचिन्त्यात्मा रामने सबके देखते-देखते मानुषभावका परित्याग करके विश्वरूप धारण कर लिया। उस समय वे अपने ही आनन्दके कारण अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो गये। तदनन्तर उन्होंने विश्वरूपको छोड़कर चिदाकाशरूप धारण कर लिया और विष्णुको लक्ष्य करके कहा ॥ ६०-६१ ॥

श्रीराम उवाच

अदृष्टमूर्तेरभवद्विरंसो-
र्मत्तो रमेश ध्वनिरम्बरादिः।
मदिच्छयैवाखिलवाक्प्रपञ्च-
स्ततः परस्मादुदभूदुदर्कः॥
लीने च यस्मिन् स्वयमद्वितीयः
स्फुरामि साक्षादहमेक एव।
योगोत्थितेनाप्यमृतत्वमेषां
भवेद्ध्वनीनामिह एव येन॥
इतोऽस्यमायात्मसुखे विधातुः
पुरस्ततोनाप्य कृशानुशीर्ष्णो।
यथोपदिष्टं गगनादिसृष्टेः
प्रागेव कालोत्तरमाद्यतन्त्रम्॥
यद्देव दिग्विश्वसृजाममीषा
तत्त्वत्रयात्मा विवृतं यथावत्।
यत्रैव दृष्टाः सकलाश्च वेदा
यैरात्मभूर्विश्वमयं व्यधत्त॥
व्योम्नीव ताराणि पदाक्षराणि
स्फुरन्ति चात्रैव मदन्तराले।
यच्छक्तयस्त्वत्प्रमुखा मुरारे
यैर्व्यक्तिमायान्ति सुराः समस्ताः॥
येभ्यः समुद्धृत्य मयोपदिष्ट-
मुपास्य ते तारकमन्त्रराजम्।
सृजन्त्यनेनैव जगन्ति रुद्राः
सिद्धाश्च साध्या ऋषयश्च भूयः॥
अनेन मन्त्रेण च वालखिल्या
वैखानसा मद्गतचेतसोऽत्र।
सृष्ट्वैव सम्यक्सुविधूतमाया
मामेव चेष्यन्त्यपि चक्रपाणे।

श्रीराम बोले—लक्ष्मीपते! जब मेरी रमण करनेकी इच्छा हुई, तब मुझ निराकारसे आकाशकी कारणभूता ध्वनि प्रकट हुई। फिर सारा वाक्-प्रपञ्च मेरी इच्छासे ही उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् उपसंहारका अवसर हुआ। जिसके विलीन हो जानेपर साक्षात् अद्वितीय स्वयं अकेला मैं ही स्फुरण करता हूँ, जिससे लोकमें इन ध्वनियोंको योगाभ्यासद्वारा उत्पन्न हुई अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। तत्त्वत्रयरूप आत्माका जो यथार्थ विवरण है, सारे वेद जहाँ दृग्गोचर होते हैं और जिनके द्वारा ब्रह्माने विश्व-प्रपञ्चकी सृष्टि की है, वही इन विश्वके रचयिताओंकी दिशा है। मुरारे! जैसे आकाशमें अविनाशी तारे चमकते हैं उसी प्रकार मेरी शक्तियाँ मेरे ही अन्तरालमें स्फुरण करती हैं। जिनसे तुम जिनमें प्रधान हो, ऐसे सारे देवगण प्रकट होते हैं, जिनके लिये मैंने तारक-मन्त्रराजको प्रकट करके उसका उपदेश किया है, उसी

मन्त्रराजकी उपासना करके उसीके बलसे वे रुद्र, सिद्ध, साध्य और ऋषिगण पुनः लोकोंकी सृष्टि करते हैं । चक्रपाणे ! इसी मन्त्रके प्रभावसे जिन्होंने सम्यक् प्रकारसे मायाको झकझोर डाला है तथा जिनका चित्त मुझमें ही लीन रहता है, वे बाल-ब्रह्मचारी वालखिल्य ऋषि मेरी प्राप्तिके लिये ही चेष्टा करते हैं ।

प्राणांस्त्यजन्तो मणिकर्णिकायां
मद्वाचकं तारकमुच्चरन्तः ।
श्रुत्वा च वेदान्तमुपास्य चान्त्यं
पश्यन्ति मामेव हि विश्वनाथम् ॥
प्राप्यैनमाराध्य च मामनेन
हिरण्यगर्भा मुनयोऽपि सप्त ।
ज्ञानं च मत्स्थमुपेत्य सम्यग्
दिवि प्रथन्ते मदनुग्रहेण ॥
अयं च मैत्रावरुणिर्विधातु-
स्तस्मात्तृतीयो भविता स्वयंभूः ।
व्यासश्च विष्णुर्भविता चतुर्थः
स्कन्दो मृडोऽस्मादपि शूलपाणेः ॥
मत्प्राप्त्युपायप्रथनार्थमेव
ब्रह्माण एते बहवो नियुक्ताः ।
यूयं च मद्वैभवबोधनार्थं
रुद्रा मदाख्यादनहेतवे च ॥
वेदेष्वमी विश्वसृजः प्रधाना
यूयं च मुख्याः श्रुतिमस्तकेषु ।
सर्वेषु शास्त्रेषु तथागमेषु
रुद्रा अमी मुख्यतमा भवन्ति ॥
मदेकदेशे जगत्यस्मिन् प्रतिगोलमवस्थिताः ।
तत्तद्गुणाधिपतयो ब्रह्मविष्णुकपर्दिनः ॥
तत्राण्डकोशे चैतस्मिन् सृष्टिकर्ताऽयमात्मभूः ।
विष्णुः पालयिता चास्य त्वमण्डस्यामरेश्वरः ॥
रुद्रोऽप्ययमहिर्बुध्न्यः संहरिष्यति तत्पुनः ।
अस्य विश्वसृजः सर्गे भुवनानि चतुर्दश ॥

'जो लोग मणिकर्णिका-तीर्थमें श्रीराम-वाचक तारक-मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्राणत्याग करते हैं, वे लोग उस वेदान्त-वाक्यको सुनकर और उसकी उपासना करके मुझ विश्वनाथका ही दर्शन करते हैं । सात हिरण्यगर्भ मुनि भी मेरी आराधना करके इस मन्त्रराजको पाकर इसके द्वारा मुझमें स्थित ज्ञानको भलीभाँति प्राप्त कर लेते हैं । तत्पश्चात् मेरी कृपासे आकाशमें स्थित होते हैं । ये मित्रावरुणनन्दन वसिष्ठ इस ब्रह्मासे तीसरी पीढ़ीमें ब्रह्मा होंगे । व्यास चौथे विष्णु होंगे और स्कन्द इस त्रिशूलपाणि शिवके पश्चात् शंकर होंगे । मेरी प्राप्तिके उपायका प्रचार-प्रसार करनेके लिये ये बहुत-से ब्रह्मा, मेरे ऐश्वर्यका ज्ञान करानेके लिये तुमलोग और मेरे आख्या देनेके लिये ये रुद्रलोग नियुक्त हुए हैं । वेदोंमें ये विश्वस्रष्टा ब्रह्मा प्रधान हैं, प्रधान श्रुतियोंमें तुमलोग मुख्य हो और सभी शास्त्रों तथा आगमोंमें ये रुद्र मुख्यतम माने जाते हैं । मेरे एकांशभूत इस जगत्‌में रजस्, सत्त्व और तमस् गुणोंके अधिपति ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र प्रत्येक गोलकमें स्थित हैं । उन गोलकोंके इस ब्रह्माण्डमें ये स्वयम्भू ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं और तुम देवेश्वर विष्णु इस ब्रह्माण्डके पालक हो । ये अहिर्बुध्न्य रुद्र पुनः इसका संहार करेंगे । इस विश्वस्रष्टाकी सृष्टिमें चौदह भुवन हैं ।

भूमाविह त्वदंशोऽसावभूद्दशरथो नृपः ।
यत्रावतीर्णं मां सर्वे वदन्त्यजमपि प्रभुम् ॥
आदौ गुणानामधिपैर्भवद्भिरमरेश्वरैः ।
मयैव सृष्टैः क्रीडार्थं सृष्टिस्थित्यन्तकारणैः ॥
स्वेषु स्वेष्विह कल्पेषु तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।
अमूर्त्तेरपि मे नित्यं रूपस्यास्य दिदृक्षया ॥
साकं भवद्भिर्गन्धर्वो विश्वावसुरपि स्वयम् ।
सहस्रमब्दैरिष्ट्वा मां सामगाग्र्यमहत्त्ववित् ॥
मामेव तोषयामास गायं गायं च सामभिः ।
नीरूपमपि मां द्रष्टुं महामायाविमोहितः ॥

मर्त्यरूपमनेनापि वृतं तत्त्वमजानता ।
निवृत्तिधर्मानुत्सृज्य काम्यकर्माणि कुर्वता ॥
राक्षसत्वमभिप्राप्तममूर्तेर्मूर्तिमिच्छता ।
मद्भक्तिलब्धयोगेन प्राप्स्यते च मदात्मताम् ॥
प्राप्तं मत्तोऽनेन निधनं मत्त एवान्यदुर्लभम् ।
रावणोऽयं महाबाहुर्मनुत्वमुपयास्यति ॥
पुनरिन्द्रत्वमासाद्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ॥
गुरोस्तु वामदेवस्य नित्यं शुश्रूषणे रतः ।
कुशनाभ इति ख्यातो ऋषित्वमुपयास्यति ॥
ऋषेरुद्दालकस्याथ पुत्रो योगविदां वरः ।
निवृत्तिधर्ममाश्रित्य मत्सायुज्यमुपैष्यति ॥
मन्दरे गुरुणा शप्तः कण्वः सोऽयं विभीषणः ।
कव्यादत्वमपि प्राप्य जहौ धर्ममनुत्तमम् ॥
ऐन्द्रं पदमनेनैव यावत् कल्पमभीप्सया ।
भोक्ष्यते मत्प्रसादेन मद्धाम प्राप्स्यते ततः ॥

'इस भूतलपर तुम्हारा अंश ही इन राजा दशरथके रूपमें प्रकट हुआ था । यद्यपि मैं अजन्मा प्रभु हूँ तथापि सभी लोग मुझे इन दशरथसे ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं । सृष्टिके आदिमें क्रीडाके लिये मैंने ही जिनकी सृष्टि की थी; जो उत्पत्ति, पालन और संहारके कारण, रज-सत्त्व-तमगुणोंके अधीश्वर तथा देवगणोंके नायक हैं, उन आपलोगोंने अपने-अपने कल्पोंमें नित्य मुझ निराकारके इस रूपके दर्शनकी इच्छासे अत्यन्त घोर तप किया था । आपलोगोंके साथ ही सहस्रों साम-शाखाओंके ज्ञाता स्वयं विश्वावसु गन्धर्वने भी हजारों यज्ञोंद्वारा मेरा यजन करके बारबार साम-मन्त्रोंका गान करते हुए मुझे ही संतुष्ट किया था; क्योंकि वह भी मुझ निराकारका दर्शन करना चाहता था । उस समय महामायाने उसकी बुद्धिको मोहित कर दिया था, इसलिये उसने भी निवृत्तिधर्मोंका त्याग करके काम्य-कर्मोंका ही आचरण किया और तत्त्वको न जानते हुए मनुष्य-रूपका ही वरण किया । मुझ निराकारको साकार-रूपमें देखनेकी इच्छाके कारण उसे राक्षस-योनिकी भी प्राप्ति हुई । अब वह मेरी भक्तिके सुयोगसे मेरी सारूप्य-मुक्तिको प्राप्त कर लेगा । मेरे ही हाथों इसकी मृत्यु हुई है जो दूसरोंके लिये दुर्लभ है । अब यह महाबाहु रावण इन्द्रकी पदवीको प्राप्त करके यथाभिलषित भोगोंको भोगकर पुनः मनुके स्थानको प्राप्त करेगा उस समय यह कुशनाभ नामसे विख्यात होगा और नित्य अपने गुरु वामदेवकी सेवा-शुश्रूषामें तत्पर रहेगा । तत्पश्चात् महर्षि उद्दालकके पुत्ररूपमें ऋषिभावको प्राप्त होगा । अपने समयमें यह योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ होगा और निवृत्तिपरक धर्मोंद्वारा मेरा भजन करके मेरी सायुज्य-मुक्तिको प्राप्त कर लेगा । यह विभीषण वही कण्व ऋषि हैं, जिन्हें मन्दराचलपर उनके गुरुने शाप दे दिया था, जिससे उन्होंने राक्षस-योनिको प्राप्त होकर अपने श्रेष्ठ ऋषिधर्मका परित्याग कर दिया । अब यह मेरी कृपासे निर्भय होकर कल्पपर्यन्त इन्द्र-पदका उपभोग करेगा । तदनन्तर इसे मेरे धामकी प्राप्ति हो जायगी ।

यद्वेलैनैव मूर्त्तापन्नानीह भूतानि सर्वदा ।
शीतोऽग्निर्भीरुरन्नीयो महाकल्पस्य प्रजापतेः ॥
जायन्ते जन्तवो बह्वः कामरूपा सुखोल्बणाः ।
व्योमगेहा वह्निभुजो वायुभाजो मनोजवाः ।
तत्रैकपादं यो रुद्रो हनुमान् मत्परायणः ।
द्वात्रिंशदर्बुदान्येव रुद्राणां पर्युपासते ॥
मद्भक्तिलब्धयोगस्तु मत्प्रसादात्मवैभवः ।
आपदुद्धरणस्त्वायं भजतां नात्र संशयः ॥
संग्रहेण प्रवक्ष्यामि गुह्यमन्यत्तवाच्युत ।
येन विज्ञानमात्रेण छिद्यते संशयः स्वयम् ॥
येयं सीता महामाया शक्तिर्मे क्रीडनः सदा ।
भिन्नेव दृश्यतेऽभिन्नां जानीहि विश्वमेव ताम् ।
कार्यकारणरूपेण येयमेका विवर्तते ।
यस्य तत्त्वं न जानन्ति देवास्त्वन्यसुरास्त्वपि ॥

अनुवाकश्रुतिभिः प्रोक्ता यथा मुच्येत बन्धनात् ।
एष मे प्रथमः पादः परमोपनिषत्ततः ॥
न यत्र शक्तिस्तत्त्वानि पराणि नैव किञ्चन ।
तदेव परमं व्योम भावाभावविलक्षणम् ॥
मद्रूपमचलं नित्यं सत्यमाद्यन्तवर्जितम् ।
तदेतदपि यस्यात्म्यं हेयं सद्यदपेक्षया ॥
यत्र कुण्ठी भवन्त्येव मानानि सकलान्यपि ।
परमं तद्धि निर्वाणं मदनुग्रहतो भवेत् ॥
मद्भावभाविता यूयं मन्मयाश्च भविष्यथ ।
स्वस्वकर्माणि कुर्वन्तो रमध्वमकुतोभयाः ॥

(अध्याय २, श्लोक ९२—१००)

'जिसके गोळकसे ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—ये पाँच भूत सदा उत्पन्न होते हैं, उन प्रजापति ब्रह्माके मुखसे जब प्रचण्ड अग्नि शीतल हो जाती है, तब उस अग्निसे ऐसे बहुत-से जन्तु उत्पन्न होते हैं, जो इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ होते हैं, उनका सुख असीम होता है, आकाश ही उनका गृह तथा अग्नि ही भोजन होता है, वे वायुवेगी तथा मनके सदृश वेगवाले होते हैं। उनमें जो एकपाद अहिर्बुध्न्य नामक रुद्र हैं, वही मेरे परायण रहनेवाला हनुमान् है, जिसकी बत्तीस अर्बुद रुद्र उपासना करते हैं उसे मेरा भक्तियोग उपलब्ध है और मेरी कृपासे समस्त वैभव उसके हस्तगत है, जिससे वह निस्सन्देह अपने भक्तोंका आपत्तिसे उद्धार करता है। अच्युत! अब मैं तुम्हें एक दूसरा ऐसा गुप्त रहस्य संक्षेपमें बतलाता हूँ, जिसके ज्ञान लेनेमात्रसे स्वयं ही संशयका नाश हो जाता है। यह जो महामाया सीता है, वह मेरी ही स्वरूपाशक्ति है। यद्यपि वह मुझसे अभिन्न है तथापि जब मैं क्रीडा करने लगता हूँ, तब वह भिन्न-सी दीखती है, उसीको तुम शिव जानो। जो यह अकेले ही कार्य-कारणरूपसे विस्तारको प्राप्त होती है, तुम जिनमें प्रमुख हो, ऐसे देवगण भी जिसके तत्त्वको नहीं जानते, जिसके प्रभावसे जीव बन्धनसे मुक्त हो जाता है ऐसा अनुवाक श्रुतियोंने जिसके विषयमें वर्णन किया है, वही मेरा प्रथम पादरूप परमोपनिषद् है। जहाँ न तो शक्तिका अस्तित्व है और न कोई अन्य तत्त्व ही वर्तमान है, वही भाव अभावसे विलक्षण परमाकाश है। जिसकी अपेक्षा यह विश्वरूप भी हेय हो जाता है, मेरा वह रूप अचल, नित्य, सत्य और आदि-अन्तसे रहित है। जिसके विषयमें सारे-के-सारे प्रमाण कुण्ठित हो जाते हैं, वही परम निर्वाण है और वह मेरे अनुग्रहसे ही प्राप्त होता है। तुमलोग मेरी भावनासे भावित तथा मुझमें ही मन लगानेवाले होओगे। अब अपने-अपने कर्मोंका सम्पादन करते हुए निर्भय होकर रमण करो' ॥९२—१००॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—यों श्रीरामके वचनको सुनकर विष्णु आदि समस्त देवताओंने मस्तकपर हाथ जोड़कर श्रीरामको पुनः-पुनः प्रणाम किया और 'राम-राम' यों जपते हुए शुद्धभावसे परायण हो उस विश्वरूपका स्मरण करते हुए उसीका अनुसंधान करने लगे। जो मनुष्य उन सर्वव्यापक रामको सिरसे नमस्कार करके श्रीशिवद्वारा कहे गये इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह इन्द्रादिकी सम्पत्तिका उपभोग करके अन्तमें विष्णुके परम पदको प्राप्त हो जाता है। जो पृथ्वी आदि सब लोकोंके पालन-पोषण करनेवाले, षडैश्वर्यसम्पन्न और उपेन्द्ररूपमें प्रकट होते हैं, उन अधोक्षज रघुश्रेष्ठ रामके मैं सदा शरणागत हूँ ॥ १०१—१०४ ॥

(स्कन्दपुराणोक्त श्रीरामगीताका दूसरा अध्याय समाप्त ।)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—तदनन्तर शम्भुके मुखसे निकले हुए श्लोकोंसे प्रसन्न होकर श्रीरामने उग्रहास्य-कायको परित्याग कर ही दिया था, पुनः विष्णुद्वारा की गयी स्तुतियोंसे उनका मुख और भी प्रसन्न हो गया। तब वे उस उत्कट भावको अन्तर्हित करके सुखमभावमें प्रतिष्ठित हो गये। ऐसी दशामें ब्रह्मा उन विश्वेश्वर श्रीरामकी स्तुति करनेके लिये उद्यत हुए ॥ १-२ ॥

ब्रह्मा बोले—'श्रीराम! आप ही चौबीस तत्त्वोंके रूपमें विद्यमान हैं तथा महान्, आत्मबल-सम्पन्न, उत्पत्ति, पालन

ब्रह्मोवाच

नमः पुंसे पुराणाय षड्विंशाय महात्मने ।
जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारमूलभूताय तेजसे ॥

और संहारके मूल बीज और तेजस्वरूप हैं, आप पुराण-पुरुषको नमस्कार है। आपका यह कार्य, कारण और कर्तासे विलक्षण है, तीनों वेद आपके नेत्र हैं, आपका स्वरूप त्रिगुणातीत है, आप् विश्व-स्रष्टा, विधाता तथा ब्रह्माके स्वामी हैं, आपको प्रणाम है। आप सर्वव्यापक विश्वका भरण-पोषण करनेवाले और विष्णुओंके स्वामी हैं, आपको मेरा अभिवादन है। आप रुद्ररूप, विश्वके संहारक और रुद्रोंके अधिपति हैं, आपको नमस्कार है। आप ही विश्वेदेव तथा महत्तत्त्वरूप हैं, आप परमात्माको प्रणाम है आप अपनी इच्छासे पचीस तत्त्वोंके रूपमें प्रकट होते हैं तथा कूटस्थ, अविनाशी, तत्त्वरहित और तत्त्वोंके अधीश्वर हैं, आपको पुनः-पुनः अभिवादन है। जिन्होंने नियतिद्वारा विश्वको आक्रान्त कर रक्खा है, जो नियतिके भी नियन्त्रण कर्ता और विश्वकर्मके एकमात्र साक्षी हैं, उन निष्क्रियस्वरूप आपको नमस्कार है। आप अपनेको तीन रूपोंमें विभक्त करके स्थित हैं—प्राग्दृष्टिसे हवि, प्रत्यग्दृष्टिसे हविके भोक्ता और दोनोंके साक्षी होता हैं, आपको प्रणाम है।

'विभो! आपकी क्रियाशक्तिसे ऋग्वेद, ज्ञानशक्तिसे यजुर्वेद और इच्छाशक्तिसे सामवेद प्रकट हुआ है। आपके शरीरमें लक्ष्मी, मनमें इच्छास्वरूपा पार्वती और वाणीमें साक्षात् भगवती सरस्वती सदैव निवास करती हैं। आप विश्वमूर्तिके असंख्य वर्ण-वैखरी हैं। जो आपके उत्तम स्वरूपका दर्शन करते हैं, उनका मध्यमवर्ती चित्त मध्यमा है। आपका जो पद स्वरूप है, वह आद्य, अव्यक्त, गुणातीत, सदा प्रकट रहनेवाला, निर्वाणरूप, अविनाशी और साक्षात् परात्पर परम पद है। विभो! आप निराकार हैं। अतः आपका न कोई स्थान है, न आकार है, न रूप है, न हेतु है और न आपके वाहनकी ही कल्पना की जा सकती है। यह जो विश्व, देवता, मनुष्य आदिके नाना आकार आप धारण करते हैं, इसका कारण तो भक्तोंपर अनुग्रह करना तथा धर्मकी संस्थापना ही है। प्रभो! काल विश्वकी गणना करता है और उस कालकी गणना आप करते हैं। श्रीराम! काल आपके नेत्रसे उद्भूत हुआ है। अतः वह आपकी गणना करनेमें समर्थ नहीं है। न मैं सृष्टिकर्ता हूँ, न विष्णु सृष्टिरक्षक हैं और न रुद्र संहारक ही हैं। यह सब बिना किसी अपेक्षाके आपके ईक्षणद्वारा होता रहता है। चारों ओर आपके नेत्र हैं, जिनसे आप देखते हैं। चारों ओर आपके मुख हैं जिनसे आप आरोगते हैं; आपकी भुजाएँ चारों ओर फैली हैं जिनसे आप कार्य करते हैं और आपके पैर चारों ओर हैं जिनसे आप गमन करते हैं। आपके पदमें मानव प्रतिष्ठित हैं और मस्तकमें देवता स्थित हैं। वेद आपकी नाभिसे निकले हुए हैं। आपने कानोंद्वारा चारों

कार्यकारणकर्तृभ्यो विलक्षणस्वरूपाय ते।
त्रिवेदीचक्षुषे तुभ्यं त्रिगुणातीतमूर्तये॥
तुभ्यं विश्वसृजे धात्रे ब्रह्मणः पतये नमः।
विष्णवे विश्वभर्त्रे च विष्णूनां पतये नमः॥
रुद्राय विश्वसंहर्त्रे रुद्राणां पतये नमः।
विश्वेदेवाय महते नमस्ते परमात्मने॥
स्वेच्छया पञ्चविंशाय कूटस्थायाविनाशिने।
निस्तत्त्वाय नमस्तुभ्यं तत्त्वानां पतये नमः॥
नियत्याक्रान्तविश्वाय नियन्त्रे नियतेरपि।
निष्क्रियाय नमस्तुभ्यं विश्वकर्मैकसाक्षिणे॥
प्राग्दृशा हविषे तुभ्यं प्रत्यग्दृशा हविर्भुजे।
तयोश्च साक्षिणे होत्रे नमस्त्रेधा स्थितात्मने॥
क्रियाशक्तेर्ऋचोऽभूवन् ज्ञानशक्तेर्यजूंषि च।
सामानि चेच्छाशक्तेस्तेऽप्यथर्वाङ्गिरसो विभो॥
श्रीस्ते काये सदैवास्ते मनसीच्छा सदा शिवा।
वाणी साक्षाद्भगवती सदैवास्ते सरस्वती॥

विश्वमूर्तेरसंख्यानि वर्णानि तव वैखरी।
मध्यमा मध्यमं चेतः पश्यन्ति यत्स्वरोचनम्॥
आद्यं पदेतदव्यक्तं गुणातीतं सदोदितम्।
निर्वाणमक्षयं साक्षात् परात्परतरं पदम्॥
न स्थानानि न चाकारो न रूपाणि न हेतवः।
न वाहनानि कल्प्यानि निराकारस्य ते विभो॥
विश्वामरनराकारा भक्तानुग्रहहेतवे।
क्रियन्ते भवता नानाधर्मसंस्थापनाय च॥
कालः कालयते विश्वं तं त्वं कलयसि प्रभो।
स त्वां कलयितुं नेष्टे राम त्वन्नेत्रसम्भवः॥
नाहं स्रष्टा न च त्राता विष्णुर्नान्तकरो हरः।
त्वदीक्षयैव सकलं विधत्ते निरपेक्षया॥
ईक्षसे विश्वतश्चक्षुर्भुङ्क्षे त्वं विश्वतोमुख।
करोषि विश्वतोबाहुर्विश्वतःपाद गच्छसि॥
पदे प्रतिष्ठिता मर्त्याः शीर्ष्णि देवा व्यवस्थिताः।
नाभेर्विनिःसृता वेदाः श्रोत्रेभ्यश्च चराचरम्।

चराचर जगत्को व्याप्त कर रक्खा है। वृषभरूपधारी धर्मके तीन पैर, चार सींग, सात हाथ और दो मस्तक हैं। वह सदा बोलनेवाला और तीन प्रकारसे आबद्ध है। वह महान् देवता आप ही हैं।

"आप ही यज्ञ, आप ही यज्ञकर्ता, आप ही हवि, आप ही देवता, आप ही ऋत्विक्, आप ही मन्त्र और यज्ञभोक्ता अग्नि हैं। आप ही घी, आप ही वसन्त, आप ही भूमिको संतप्त करनेवाला ग्रीष्म और आप ही शरद् ऋतु हैं। आप पवित्र हविको सात मुख धारण करके ग्रहण करते हैं। प्रभो! आप अपने सुखके लिये अपने द्वारा अपने मुखमें इस विश्वकी आहुति देते हैं। सदानन्दस्वरूप! यह सनातन यज्ञ आपकी प्राप्तिके लिये ही है। आपकी यह पारमेश्वरी नियति हमलोगोंद्वारा दुर्लक्ष्य है। अतः आपकी तीव्र शक्तिके सहारे हमलोग मुक्तिके लिये उसीकी खोज कर रहे हैं। विप्रगण पहले चार वर्णोंसे, पुनः चार, दो और पाँचसे, पुनः चार और दोसे आप साक्षात् यज्ञपुरुषके लिये आहुतियाँ देकर अमृतस्वरूप हो जाते हैं। श्रीराम! यह प्राज्ञ पुरुष जागतमें विश्वको, स्वप्नमें इस तेजको तत्पश्चात् सूक्ष्म सुषुप्तिको प्राप्त होता है। अथवा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तुरीयधाममें जिस अखण्ड ब्रह्मका दर्शन करता है, वह आप ही हैं। महेश! जो लोग शरीर, मन और वचनसे आपकी भक्ति करते हैं, उनकी इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती हैं। फिर तो उनका आवरण नष्ट हो जाता है और वे मायासे मुक्त हो जाते हैं। तत्पश्चात् वे आपके साथ ऐक्य—सायुज्य-मुक्तिका आस्वादन करते हैं। दीनबन्धो! यदि हृदयसे क्षणमात्र भी आपका ध्यान कर लिया तो क्या वह कभी अणुसे लेकर विभु-पदतकका त्याग कर सकता है? अर्थात् वह सूक्ष्मसे लेकर महान् पदतकका अधिकारी हो जाता है। इसी प्रकार अनाहत नादसे उत्पन्न हुई वाणी भी परमप्रकाशके अंदरसे आप सर्वव्यापक रामको आकाशका निदानरूप बतलाती है। अपने-अपने स्वभावोंसे मुक्त हुई बाह्य और आन्तरिक इन्द्रियाँ भी उस अखण्ड पदका त्याग कैसे कर सकती हैं। यह शरीर अपने कर्म-समुदायसे आपका भजन करता हुआ यज्ञके फलस्वरूप स्वयं ही विश्वाकारताको ग्रहण कर लेता है। इन्धन पहले जड ही रहते हैं परंतु जब वे अग्निके भीतर डाल दिये जाते हैं तब क्या अग्निका स्वरूप नहीं धारण कर लेते अर्थात् अग्निस्वरूप ही हो जाते हैं, उसी प्रकार ईश! ये तत्त्व आपसे पृथक् रहनेपर जड कैसे माने जा सकते हैं जब कि आपमें प्रविष्ट होनेपर आपके ही स्वरूप हो जाते हैं।

वृषस्त्रिपाच्चतुःशृङ्गः सप्तहस्तो द्विमस्तकः ।
सदारवस्त्रिधाबद्धो महान् देवस्त्वमेव हि ॥
त्वमेव यज्ञस्त्वं यष्टा त्वं हविस्त्वं हि देवता ।
त्वमेव चर्त्विजो मन्त्रास्त्वं वैश्वानर यज्ञभुक् ॥
त्वं सर्पिस्त्वं वसन्तस्त्वं ग्रीष्मो भूदिध्म एव च ।
सप्तैव हविः पूतं सप्तास्यः परिधीयते ॥
स्वात्मनि हूयते विश्वं स्वात्मार्थाय त्वया प्रभो ।
त्वत्प्राप्तये सदानन्द क्रतुरेष सनातनः ॥
दुर्लक्ष्येयमस्माभिर्नियतिः पारमेश्वरी ।
त्वत्तीव्रशक्त्या तामेव मुक्तये मृगयामहे ॥
चतुर्भिर्वर्णैश्च पुनश्चतुर्भि-
द्वाभ्यां च विप्रा इह पञ्चभिश्च ।
हुत्वैव यज्ञाय पुनश्चतुर्भ्यां
द्वाभ्यां हि साक्षादमृतीभवन्ति ।

जाग्रद्विश्वं स्वप्नमेतद्धि तेजः
प्राज्ञश्चाय याति सूक्ष्मां सुषुप्तिम् ।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मं धाम यत्ता तुरीयं
ब्रह्माखण्डं राम चैतन्यमेव ॥
ये त्वां भजन्ति वपुषा मनसा च वाचा
तेषां भवन्ति करणानि पवित्रितानि ।
तैरैक्यमेव भवता सह मुक्तमायै-
रास्वाद्यते ननु निरावरणैर्महेश ॥
ध्यातो भवान् यदि हृदा क्षणमात्रमण्वी
किं तज्जहात्यणुविभुत्वपदं कदाचित् ।
धाराप्यनाहतमना परमात्मगन्त-
स्त्वां वक्ति रामिति विभुं नभसो निदानम् ॥
बाह्यान्तराणि करणान्यपि तैः स्वभावै-
र्मुक्तान्यखण्डितपदं कथमुत्सृजेयुः ।
देहः स्वकर्मविभवैश्च भजन् भवन्तं
विश्वाकृतिं क्रतुवशात् स्वयमाददाति ॥
अग्निं प्रपन्नान्यपि काष्ठानि हुताशनान्तः-
क्षिप्तानि किं न हि भजन्ति हुताशनत्वम् ।
तत्त्वान्यमूनि कथमीश जडानि तद्वत्
त्वत्तः पृथक्त्वमपि गतानि विभोर्मतेषु ॥

‘जिनकी बाह्य तथा आन्तरिक मायाका विनाश हो चुका है, ऐसे अज्ञानरहित मुनिगण एकमात्र आपका ही चित्-सूर्यरूपमें दर्शन करते हैं, यद्यपि सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा—ये तीनों भी आपके ही अंश हैं और अपनी किरणोंद्वारा लोकोंको प्रकाशित करते हैं। विश्व जिनका स्वरूप है, विष्णु, ब्रह्मा, शिव आदि जिनकी मूर्तियाँ हैं, जो तत्त्वोंके रूपमें विद्यमान तथा निरन्तर ज्ञानस्वरूप हैं—उन आपको जो लोग इस जगत्में भलीभाँति भजते हैं, उन्हें उसीके समान रूप और लोकोंकी प्राप्ति होती है। फिर वे तन्मय होकर सामीप्य-मुक्तिके भागी बनकर आपके निकट पहुँच जाते हैं। भगवन्! आप एक हैं और आपको इन्द्रियोंकी अपेक्षा नहीं है, फिर भी स्वतन्त्र रहते हुए आप एक साथ सबका साक्षात्कार कर लेते हैं; परंतु परमेश्वर! ऐसा कोई नहीं है जो क्रमशः सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी सहायतासे कहीं भी आपका साक्षात्कार करता हो। जिनका अज्ञान नष्ट हो चुका है और जिनके प्राण तथा मन सदा आपमें ही संलग्न रहते हैं ऐसे जो लोग अपनी विभूतिसे विश्वमें व्याप्त रहनेवाले, अचल, परात्पर, अद्वितीय आपका ध्यान करते हैं, उन्हें यमका भय कहाँसे हो सकता है? क्योंकि वे तो कालको भी ग्रास बनानेवाले होते हैं। कहाँ तो सुकृतोंद्वारा उपार्जित यह परिमित सम्पत्ति और कहाँ आत्मामें स्थित यह अनघ महान् विभूति! किंतु श्रीराम! जो एकमात्र आपके उत्तम पदका ही सेवन करनेवाले हैं, उन मुनियोंके लिये इन्द्र आदिकी सम्पत्ति भी तुच्छ कौड़ीके ही समान है। ये समस्त वेद आदि जिनके श्वाससे प्रकट हुए हैं, उन आपकी स्तुति हम कैसे करें? आप मनकी भूमिकासे परे, विश्वकी सीमासे ऊपर और सदैव विश्वमें निवास करनेवाले हैं—ऐसे आपको भला हम कैसे जान सकते हैं?’ ॥ ३–३६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—आत्मनाथ! इस प्रकार कमलयोनि ब्रह्माने सैकड़ों स्तुतियोंद्वारा श्रीरामको संतुष्ट किया। फिर वाणीकी शक्तिसे परे होनेके कारण हृदयसे ध्यान करके तत्त्वको प्राप्त किया। फिर तो उनका मन आनन्दमग्न हो गया और वे चुप हो गये। तदनन्तर बालखिल्य आदि मुनि प्रसन्नमनसे उन प्रशान्त तथा परमानन्दविग्रह ईशानकी स्तुति करने लगे ॥ ३७-३८ ॥

बालखिल्य बोले—‘श्रीराम! आपसे पर अथवा अपर कुछ भी नहीं है और न कुछ आपसे अणु अथवा महान् ही है। आप सदा अद्वितीय, स्वराट् और अपार हैं तथा सर्वव्यापक होते हुए आकाशको नियन्त्रित कर पुनः आकाशका-सा व्यवहार करते हैं। आपको कोई कर्म, संतान अथवा धनसे नहीं प्राप्त कर सकता; क्योंकि आप सदा सर्वत्र आत्मतृप्त हैं। आपका रूप सदा एक-सा रहनेवाला है; अतः अवधूतलोग हृदय-गुहाके अंदर उच्चस्वरसे उद्गीथका उच्चारण करके आपको प्राप्त कर लेते हैं। जो विद्वान् हैं, वे उन धर्मोंका भी पालन नहीं करते जिनका विधान आपके लिये हुआ है; क्योंकि उनकी उत्पत्ति आपकी भक्तिमें विघ्न पड़नेके कारण ही हुई है। तब भला, उनकी बुद्धि अधर्ममें कैसे लग सकती है? जिन सुकृती जनोंपर आप प्रसन्न हो जाते हैं, उन्हें हिंसा, मद, चोरी और परिग्रहसे

त्वामेकमेव बहिरन्तरभिन्नमाया-
पश्यन्त्यपास्ततमसो मुनयश्चिदर्कम् ।
यस्यांशतोऽर्कहुतभुग्हिमरश्मयस्ते
ह्याभासयन्ति भुवनानि करैस्तपोऽपि ॥
विश्वाकृतिं हरिविरञ्चिशिवादिमूर्तिं
तत्त्वाकृतिं तव निरन्तरबोधसत्त्वम् ।
सम्यग् भजन्ति इह तत्समरूपलोकाः
संनिधिमेत्य उपयान्ति च तन्मयास्ते ॥
एकस्त्वमेव सकलं करणानपेक्षः
साक्षात्करोषि युगपद्भगवन्स्वतन्त्रः ।
नैवास्ति सर्वदमितैः करणैः क्रमेण
साक्षात्करोति परमेश्वर कश्चिदीशम् ।
ये त्वामपास्ततमसो निजया विभूत्या
सुव्याप्तविश्वमचलं परमद्वितीयम् ।
ध्यायन्ति लीनपवनास्त्वयि लीनचित्ताः
कालाशिनां यमभयं कुत एव तेषाम् ॥
क्व श्रीरियं परिमिता सुकृतैरुपात्ता
क्वात्मस्थितेयमनघा महती विभूतिः ।
राम त्वदुत्तमपदैकभुजां मुनीना-
मिन्द्रादिसम्पदपि तुच्छकपर्दिकेव ॥
स्तुमः कथं त्वामनिशाश्रयन्ते
वेदादयो यत्प्रकटीकृताः समस्ताः ।
गिरां [illegible] मनसोऽतिभूमिं
विश्वाधिकं विश्वसदं सदैव ॥

(अध्याय १, श्लोक ३ से ३६)

निवृत्ति, उग्र तपस्या, इन्द्रिय-संयम, संतोष, आस्तिकता और अखण्ड भक्तिकी प्राप्ति स्वयं हो जाती है। संसारके भयसे आपका आश्रय-ग्रहण, भोगोंमें एकमात्र दोषदृष्टि, आपमें अनन्यभाव आदि जो आपकी प्राप्तिके उपाय हैं, वे आपके प्रसन्न होनेपर संयमशीलोंके अधिकारमें स्वयं आ जाते हैं। ईश ! जबतक पञ्चतत्त्वोंका राज प्राण परिस्पन्दन कर रहा है और चित्त भी उससे बँधा हुआ उसीके पीछे दौड़ रहा है, अहंकार भी देहादि अनात्म वस्तुओंके ग्रहणके कारण जन्म-मरणसे सम्बन्धित है तबतक मुक्ति कैसे हो सकती है !

'आसक्तिहीनता, आकाशमें विलीन होना, अपनी सत्तामात्रकी स्थिति, नित्य लोभहीनता, गुरुसे अभेद, आपके साथ अपनी समता—ये सब आपकी कृपासे सभी प्राणियोंमें पाये जाते हैं। जो स्त्रियोंके इन्द्रियगोचर होनेपर उन्हें मिट्टीके ढेलेके समान और भोगकालमें विषतुल्य देखता है, उस जीवके मनका नाश हो जाता है। तब आपकी कृपासे उसे इस जन्ममें ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। ये जो पूर्ण सिद्धलोग हैं वे बाहर-भीतर अखण्डरूपसे विद्यमान आप अद्वितीयको देखकर संकोचका त्याग कर देते हैं, फिर आपका सहारा लेकर सायुज्य मुक्तिरूप साम्राज्य-पदमें रमण करते हैं। आप अन्तहीन हैं, फिर भी आपके उदरमें अन्तर देखना महान् भयका स्थान है; किंतु जो अपनेसे भिन्न दूसरा कुछ भी नहीं देखता, उस अखण्डदर्शीके लिये भय कहाँसे हो सकता है ! भक्तगण शरीर, प्राण, अन्तःकरण, अहंकाररूपी हविको नमस्काररूपी स्रुवाद्वारा ऊपर उठाकर और स्वाराज्यको प्रणवसे संयुक्त करके होमाग्निमें हवन करते हैं। सत्, त्वम्, अहम्, मृषा हैं' इस प्रकारके ये तीनों भाव जीवको तभीतक जीवभावमें जकड़े रखते हैं, जबतक अज्ञानाच्छादित मन घनीभूत चिदाकाशस्वरूप आपमें ही विलीन नहीं हो जाता। जिनके कर्मानुष्ठान आपके लिये ही होते हैं, जो उत्कृष्ट वाणीद्वारा आपके नामका जप करते हैं और आपके लिये ही जिनके प्राण प्रवाहित हुए रहते हैं, उनके मन चिदाकाशस्वरूप आपमें ही प्रलयको प्राप्त हो जाते हैं। जिनका ज्ञान न होनेसे ही मनुष्योंको संसारमें जन्म लेना पड़ता है और जिनके ज्ञानसे तुरंत ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है उन आप परात्पर परमेश्वरको हम केवल नमस्कार कर रहे हैं।

'परमहंसस्वरूप आपको नमस्कार है। आप शुचिषद्को प्रणाम है। आपका तेज परमोत्कृष्ट है, आप अन्तरिक्षमें वास करनेवाले हैं, ऐसे वसुरूप आपको अभिवादन है। प्राचीन होतारूप आपको नमस्कार है। वर्हिषद् पितृगण आपके ही स्वरूप हैं, आपको प्रणाम है। आप द्रोणसद्को अभिवादन है। अतिथिरूप आपको नमस्कार है। आप मित्र, कर्ता और वरुण हैं, आपको पुनः-पुनः प्रणाम है। स्वराट्, धाता तथा आकाशवासी आपको सदा मेरा नमस्कार प्राप्त हो। आप अमृत तथा नित्य सत्य हैं, सूर्य आपके ही स्वरूप हैं, मित्र आपका नेत्र है, आपको प्रणाम है। आपके शरीरका रंग स्वर्ण-सा चमकीला है, मित्र आपका वीर्य है, ऐसे मित्रामस्वरूप आपको अभिवादन है। आप शिपिविष्ट तथा यज्ञपति विष्णुको नमस्कार है। पुरोहित, यज्ञ और इन्द्र आप ही हैं, आपको प्रणाम है। सामवेद आपका शरीर तथा शब्दब्रह्म आपकी मूर्ति है, आपको अभिवादन है। आप (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप) त्रिमूर्तिधारी परब्रह्मको बारंबार प्रणाम है। आप सुन्दर पंखोंसे विभूषित गरुड़ हैं। त्रिवृत् आपका सिर कहा जाता है। स्तोम नाम यज्ञपुरुषका आत्मा तथा उत्तम गायत्र साम आपका नेत्र है। बृहत् और रथन्तर नामक साम आपके पक्ष तथा वामदेव्य साम आपका शरीर है। छन्द आपके अङ्ग और यज्ञ एवं यज्ञ-सामग्रियाँ आपकी पूँछ हैं। बृहत् आपका नित्य निवासस्थान है। आपका नाम यजुर्वेदकी ऋचाएँ हैं। आपके ऐसे तारक रूपकी हमलोग नित्य उपासना करते हैं॥ १९—६१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—यों भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए उन वालखिल्य मुनियोंका चित्त भगवद्धाममें आविष्ट हो गया और वे वहीं परब्रह्ममें समाधिको प्राप्त हो गये। तदनन्तर जब इन्द्रको यह ज्ञात हो गया कि वे परमेश्वर श्रीराम ब्रह्मा, विष्णु और शिवके द्वारा भी अचिन्त्य हैं तब वे भी भक्तिका आश्रय लेकर श्रीरामकी स्तुति करने लगे॥ ६२-६३॥

इन्द्र बोले—'श्रीराम ! आप निरालम्ब, निष्क्रिय, सदा प्रपञ्चरहित और स्वानन्दमें मग्न रहनेवाले हैं। हमलोग सदासे आपके किंकर हैं और प्रतिदिन कर्माटवीमें भटक रहे हैं। अतः ईश ! अपनी परमोत्कृष्ट करुणासे हमारा इस भवसागरसे उद्धार कीजिये। यद्यपि आप देवों वाणीके अगोचर, ब्रह्मादि देवोंके लिये भी अचिन्त्य, अविनाशी, अद्वितीय प्रभु हैं, तथापि मैं आपको भूमण्डलका शासन करनेवालोंमें श्रेष्ठ एक रघुवंशी राजा ही समझता था।

ईश्वर ! यह देव-परिषद् आपको त्रिनेत्रधारी, सर्पका आभूषण धारण करनेवाले चन्द्रमौलि रुद्रके रूपमें, जलसे भरे हुए नये बादलकी-सी आभावाले गरुडवाहन विष्णुके रूपमें तथा कमलासन चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें देख रही है। ईश ! मुनियोंकी परिषद्, जो तत्त्वज्ञानमें निपुण है, आपको वेदान्तप्रतिपादित अद्वितीय ब्रह्म मानती है; सिद्धसमुदाय आपको विश्वरूप मानता है; परंतु यह योगीन्द्रोंकी सभा आपको विश्वातीत आदिपुरुष ही मानती है। श्रीराम ! इस प्रकार विद्वान्लोग परावर (ऊँच-नीच) के विचारसे बहुत-सा रूप धारण करनेवाले अद्वितीय आपका अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं; किंतु हम तो आपको विश्वरूप नाटकके एकमात्र अभिनेता, अप्रमेयस्वरूप सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ही मानते हैं।

'आप कालके भी महाकाल हैं; क्योंकि आपके नेत्र मूँदते समय जिनके एक-एक दिनमें चौदह इन्द्रोंका समय बीतता है, ऐसे ये सुरश्रेष्ठ कितने ब्रह्मा आदि भी नष्ट हो जाते हैं। हमलोगोंका दिन तो एक मानव-वर्षके बराबर कहा गया है। श्रीराम ! यद्यपि आप एक, अजन्मा, विभु और अद्वितीय हैं तथापि जब कभी आपकी यह इच्छा होती है कि मैं बहुत रूपोंमें प्रकट होऊँ (एकोऽहं बहु स्याम्), उस समय आत्माराम आपकी परमोत्कृष्ट क्रिया, इच्छा और ज्ञानस्वरूपिणी तीनों शक्तियाँ भी प्रकट होती हैं। जिन शक्तियोंके कलाविलासमें करोड़ों दशाननरूपी कीड़े और इन्द्ररूपी मच्छरोंका स्थान कहाँ है—यह हम नहीं जान पाते, उन शक्तियोंकी मूल जननी आपकी आद्याशक्ति सीता हैं, जिनके लिये आपने यह युद्धलीला की है। ईश ! आप स्वात्माराममें काम कहाँ ! आप साक्षात् शिवमूर्ति हैं, आपमें क्रोध कैसा ! अथवा सच्चिदानन्दभानुरूप आपमें मोहकी सम्भावना कैसे हो सकती है। आपमें जो इस प्रकारकी कल्पना की जाती है, वही अज्ञानका कारण है। कर्मोंकी इच्छा ही भ्रान्तिकी जड़ है; परंतु यह भ्रान्ति मोहरहितोंके लिये सदा नहीं रहती; क्योंकि ये श्रेष्ठ मुनिगण आपकी भक्तिके द्वारा ज्ञान प्राप्त करके भ्रान्तिकी जड़को भलीभाँति नष्ट कर डालते हैं। महेश ! जिनकी समस्त कामनाएँ नष्ट हो चुकी हैं, जो एकमात्र अपने आत्मामें ही तृप्त हैं, ऐसे परमावधूत वहाँ जीवन धारण करते हैं, वहीं आपसे विमुख रहनेवाले, बहिर्दर्शी सकामी जीव मृत्युको प्राप्त होते हैं।

'प्रभो ! जैसे उत्कृष्ट गुणसम्पन्न वेद आपके निःश्वास तथा वेदके सर्वोच्च भाग गुण आदि आपके उच्छ्वास हैं, उसी तरह अचिन्त्य-शक्तिसम्पन्न आपकी लीलासे जगत्में जीवोंके बन्धन और मोक्ष—ये दोनों भी हों। मोहसे कामकी उत्पत्ति होती है और उसके परिणामस्वरूप क्रमशः क्रोध और मोह उत्पन्न होते हैं। यों चक्रकी आवृत्तिके समान पाशोंसे जकड़ा हुआ मैं सदा भटक रहा हूँ, अब मुझे इन पाशोंका छेदन करके आपके अतिरिक्त दूसरा कौन मुक्त कर सकता है ? रामभद्र ! अपने-अपने अधिकारोंमें नियुक्त होनेपर गुणोंद्वारा प्राप्त हुए भोगोंसे अन्धीभूत नेत्रोंवाले हमलोग भव-सागरमें डूब रहे हैं। यदि आप हमारा उद्धार कर देंगे तो हम यहाँसे उछलकर आपमें ही लीन हो जायँगे। महाचिदात्मस्वरूप भगवन् ! ये छब्बीसों तत्त्व हमें घेरकर खड़े हैं। यदि आपकी आज्ञासे आपकी प्रचण्ड शक्तिद्वारा इनका भेदन हो जाय तो आपमें और हममें कहीं अणुमात्र भी भेद नहीं है। भोगोंमें जो इच्छा होती है, मेरी वह इच्छा अथवा कर्म यदि स्वतः ही आपमें हो जाय तो उससे आपमें प्रतिष्ठित रहनेवाला ज्ञान मिल जाय; परंतु आपके प्रसन्न हो जानेपर तो यह सब यों ही प्राप्त हो जाता है। दीनबन्धो ! मैंने यह विज्ञापन कर दिया है, उसे सुनकर आप मेरी भव-बाधाकी शान्ति करें अथवा न करें (यह तो आपके अधीन है)। मैंने जीवोंके हितके लिये यह याचना की है। मेरी यह भक्ति आपमें निश्चलरूपसे स्थित हो जाय। आपकी भक्ति यदि शरीर, वाणी और मनसे तन्मय होकर की जाय तो उससे आपकी कृपा सुलभ हो जाती है। अतः आप अभिवादनीय परात्पर पुरुषको अपने सम्पूर्ण भावोंसे हम नमस्कार कर रहे हैं।

'शब्द-अर्थ जिनके नेत्र हैं तथा जो शब्दसे परे हैं, उन आपको नमस्कार है। आप विश्वकी एकमात्र योनि तथा देवोंके अधिदेव हैं, आपको प्रणाम है। वेदान्तद्वारा जाननेयोग्य तथा वेदके मुखस्वरूप आपको अभिवादन है। आप त्रिगुणोंसे शून्य तथा अटल ज्योतिवाले हैं, आपको पुनः-पुनः नमस्कार है। आप सत्योंके भी सत्य तथा विज्ञानकी मूर्ति हैं, निर्मल आनन्दस्वरूप आपको बारंबार प्रणाम है। आप ही यज्ञ, वषट्कार, विष्णु और प्रजापति हैं। होता, मन्त्र, इन्द्र और अग्नि भी आपके ही स्वरूप हैं। आप ही दक्षिणा, श्रद्धा, हवि और देवता हैं। लोक, काम, मन और इन्द्रियाँ भी आप ही हैं। आप ही विद्या,

अविद्या, काल और प्रकृति हैं। क्रियाकी समाप्तिमें दीक्षितोंको फल प्रदान करनेवाले आप ही हैं। आप विश्वके कर्ता, भोक्ता, संहारक और विश्वरूप हैं। आप शुचि, विश्वात्मा, शुद्ध, निष्काम और महान् उत्कर्षसम्पन्न हैं। आपका वर्ण सुवर्णका-सा चमत्कार है। आप सर्वोत्तम सामर्थ्यशाली हैं। पूर्व आपके स्वरूप हैं। आप विश्वाधिक तथा महर्षि हैं। विश्वेदेव भी आप ही हैं। आप ओंकार, वषट्कारात्मक, कर्ता, हर्ता, विराट्, शिव, शुक्र, यजुः, साम, ऋत, सत्य, महान्, तप, अक्षर, अचल, ध्रुव, महादेव और चिदाकाश-रूप धारण करनेवाले हैं। इन महान् मन्त्रोंद्वारा एक आप परमात्माका ही यजन करते हैं। ब्रह्मा आदि भी जिनका अन्त न पाकर शान्त हो जाते हैं उन भला दूसरा कौन आपको सोलोंद्वारा संतुष्ट कर सकता है। उरुगाय! आपको नमस्कार है' ॥ ६४—९२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—यों अपनी बुद्धिके अनुसार स्तुति करके इन्द्रने उनपर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा की और कहा—'श्रीराम! शरणागत भक्तोंके दुष्कर्मका विनाश करनेके लिये आपका नाम-जप प्रलयाग्निके दावानलके समान है।' तत्पश्चात् इन्द्रने वाद्यसमूहोंको मँगवाकर प्रत्येक दिशामें लोकपालोंसहित देवाङ्गनाओंका नाच कराया और स्वयं 'अखिल लोक-समुदायके आदिस्वामी श्रीरामकी जय हो' यों पद-पदपर गाते हुए विराम किया। भक्ति-सम्पन्न उन इन्द्रद्वारा यों स्तवन किये जानेपर श्रीरामने समस्त देवोंकी ओर दृष्टिपात करके उनका हर्ष बढ़ाते हुए कहा— ॥ ९३—९५ ॥

श्रीराम उवाच

भो भोस्तत्त्वाधिपतयो मुनयश्च तपोधनाः ।
सिद्धाः साध्याश्च पितरो ये चान्ये गोलवर्तिनः ॥
मयैतद्विदितं सर्वं यदर्थं यूयमागताः ।
तत्तथैव विधास्यामि भयं वो व्यपगच्छतु ॥
भवद्भिर्यदिदं दृष्टं वैश्वात्म्यं मम शाश्वतम् ।
एकांशमात्रमेतद्धि ब्रह्माण्डानेकमण्डितम् ॥
अत ऊर्ध्वमसंसक्तस्तत्त्वातीतो निरन्तरः ।
नित्यशुद्धो निरातङ्को मायातीतो निरञ्जनः ॥
निरंशो यः पराकाशो भावाभावविलक्षणः ।
निस्तरङ्गसदानन्दसुधाब्धिरतिनिर्मलः ॥
निरालम्बो निराकारो विभुरेकः परः स्वराट् ।
सोऽहं भवद्भिरखिलैर्द्रष्टुं शक्यो न जातुचित् ॥
भक्त्यैव दृढया सम्यक् नित्यमभ्यासिनः सुराः ।
ममैतत्परमं रूपं यूयं द्रक्ष्यथ* चापरे ॥

(अध्याय ६, श्लोक ९६ से १०२)

श्रीराम बोले—'हे भो तत्त्वाधीश्वर तपोधन मुनि-गण, सिद्ध और साध्योंके समुदाय, पितर तथा ब्रह्माण्ड-गोलकवासी अन्य जीवो! जिस लिये तुमलोग यहाँ आये हो, वह सारा वृत्तान्त मुझे विदित है। मैं तदनुकूल ही विधान करूँगा; अतः अब तुमलोगोंका भय दूर हो जाना चाहिये। इस समय तुमलोगोंने मेरे जिस सनातन विश्वरूपका दर्शन किया है, वह अनेक ब्रह्माण्डोंसे सुशोभित मेरा एक अंशमात्र है। इसके ऊपर जो आसक्तिरहित, तत्त्वातीत, अभेदस्वरूप, नित्यशुद्ध, निर्भय, अप्रमेय, मायाहीन, अंशवर्जित, चिदाकाशस्वरूप, भाव-अभावसे विलक्षण, तरङ्गरहित सदानन्दामृत-सागर, अत्यन्त निर्मल, आलम्बनहीन, निराकार, व्यापक, अद्वितीय, परात्पर स्वराट् है, वह मैं ही हूँ। तुम सब लोग कभी भी मेरा दर्शन नहीं कर सकते। देवताओ! जो नित्य भलीभाँति अभ्यास करनेवाले हैं, ऐसे तुमलोग तथा अन्य मानव-गण भी अटल भक्तिद्वारा ही मेरे इस परम रूपको देख सकोगे।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार यह उपनिषद्-सम्बन्धी तत्त्व स्तोत्रके माध्यमसे प्रकाशित हुआ है। इसका बारंबार स्मरण करके वे सब क्षणमात्रके लिये तन्मयताको प्राप्त हो गये। जिन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो चुका है तथा जो परमहंस-विग्रहधारी हैं, ऐसे वे पवित्र सिद्ध मानस-तीर्थमें इस ब्रह्मविद्यारूपिणी स्तुतिका जप करते हैं। इस स्तोत्रके माहात्म्यका वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। निस्संदेह यह अभिलषित पदार्थोंको देनेके लिये कामधेनु है। जो स्तुति करने योग्य, सर्वोच्च महनीय, देवोंके अनन्य स्वामी उन महापुरुष रामका ध्यान करके ब्रह्माद्वारा कहे हुए इस

* इदानीं कथय पुनर्द्रक्ष्यथापरे नरा द्रक्ष्यन्तीत्यर्थः ।

स्तोत्रका पाठ करता है, वह अविनाशी परम धाममें चला जाता है। जो नित्य इन तीनों (शंकर, विष्णु तथा ब्रह्माकृत) स्तोत्रोंका पाठ अथवा श्रवण करते हैं, उनके हृदयमें योग-सम्पद्, वैराग्य और ईश्वर-भक्ति उत्पन्न हो जाती है। देव! इस स्तोत्रमें जो अक्षर या पद छूट गये हों अथवा जो मात्राहित उच्चरित हुए हों, उन सबको क्षमा कर दीजिये। रघुनन्दन! प्रसन्न होइये॥ १०३—१०८॥

श्रीस्कन्दपुराणोक्त श्रीरामगीताका तीसरा अध्याय समाप्त॥

उपनिषदोंमें श्रीरामवचनामृत तथा श्रीराममहिमासहित रामतत्त्व

(१)

मुक्तिकोपनिषद्

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

वह (परमात्मा) पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे पूर्ण निकलता है, पूर्णसे पूर्ण निकलनेपर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

हनुमान्‌का प्रश्न

ॐ अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यमे।
सीताभरतसौमित्रिशत्रुघ्नाद्यैः समन्वितम्॥
सनकाद्यैर्मुनिगणैर्वसिष्ठाद्यैः शुकादिभिः।
अन्यैर्भागवतैश्चापि स्तूयमानमहर्निशम्॥
धीविक्रियासहस्राणां साक्षिणं निर्विकारिणम्।
स्वरूपध्याननिरतं समाधिविरमे हरिम्॥
भक्त्या शुश्रूषया रामं स्तुवन्पप्रच्छ मारुतिः।
राम त्वं परमात्मासि सच्चिदानन्दविग्रहः॥
इदानीं त्वां रघुश्रेष्ठ प्रणमामि मुहुर्मुहुः।
त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतो राम मुक्तये॥
अनायासेन येनाहं मुच्येयं भवबन्धनात्।
कृपया वद मे राम येन मुक्तो भवाम्यहम्॥

श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरीमें रमणीय रत्नमण्डपके बीच सीता, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न आदिसे समन्वित होकर रत्नसिंहासनपर आसीन थे। सनक-सनन्दनादि मुनिगण, वसिष्ठ आदि गुरुजन तथा शुकादि अन्यान्य भागवत रात-दिन उनका स्तवन करते रहते थे। सर्वान्तर्यामी एवं निर्विकार श्रीरामचन्द्रजी एक समय अपने स्वरूप-ध्यानमें रत होकर समाधिस्थ हो रहे थे। उनकी समाधि टूटनेपर श्रीहनुमान्‌जीने भक्तिपूर्वक सुननेकी इच्छासे स्तवन करते हुए श्रीरामचन्द्रजीसे पूछा—'श्रीरामजी! आप परमात्मा हैं, सत्-चित् और आनन्दस्वरूप परमात्माके अवतार हैं। रघुवर! इस अवसरपर मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ। श्रीरामजी! मैं आपके यथार्थ स्वरूपको जानना चाहता हूँ, जो मुक्ति प्रदान करनेवाला है, जिससे मैं अनायास—सहजमें ही इस संसार-बन्धनसे छूट जाऊँ। श्रीरामजी! कृपा करके मुझसे उसका वर्णन कीजिये, जिससे मैं मुक्त हो जाऊँ।'

श्रीरामका उत्तर

साधु पृष्टं महाबाहो वदामि शृणु तत्त्वतः।
वेदान्ते सुप्रतिष्ठोऽहं वेदान्तं समुपाश्रय॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'महाबलशाली हनुमान्! तुमने अच्छा प्रश्न किया। मैं तत्त्वकी बात कहता हूँ, सुनो। मेरा स्वरूप वेदान्तमें अच्छी प्रकारसे वर्णित है, अतएव तुम वेदान्तशास्त्रका आश्रय लो।'

हनुमान्‌का प्रश्न

वेदान्ताः के रघुश्रेष्ठ वर्तन्ते कुत्र ते वद।